अभिनव कृषि

वर्ष–5 अंक–1 मार्च–2023 रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869

विशेषांक

अन्तर्राष्ट्रीय मोटा अनाज वर्ष–2023

प्रसार शिक्षा निदेशालय

कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)–324001

कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Agriculture University, Kota
षष्ठम् दीक्षान्त समारोह
Monday
13 March

कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Agriculture University, Kota
षष्ठम् दीक्षान्त समारोह
6th Convocation
Monday
13 March 2023

#IFFCONanoUrea
IFFCO
इफको नैनो यूरिया तरल
पेश है किसानों के लिए दुनिया का पहला नैनो यूरिया!
लागत कम करने में सहायक
किसानों की आय में सुनिश्चित वृद्धि
मिट्टी की गुणवत्ता को बढ़ाए
फसल उपज को बढ़ाए
पौधों के पोषण में सहयोगी
पारंपरिक यूरिया से सस्ता
NANO UREA
Liquid
FOLLOW US:
INDIAN FARMERS FERTILISER COOPERATIVE LIMITED
IFFCO Sadan, C-1 District Centre, Saket Place, New Delhi - 110017, INDIA
Phones : 91-11-26510001, 91-11-42592626. Website : www.iffco.coop
इण्डियन फारमर्स फर्टिलाइजर कोआपरेटिव लिमिटेड
जयपुर तृतीय तल, नेहरू सहकार भवन, जयपुर, राजस्थान, राजस्थान 302001
दूरभाष : 0141-2740660, 2740307, 2740307

ललित पाटीदार
(M.Sc. Horticulture)
मो. 9413023482, 9887437524
अम्बिका मॉर्डन एग्रीकल्चर
KRISHI
SUMITOMO CHEMICAL
Ramaley
DUPONT
BAYER
BASF
We create chemistry
नर्सरी टूल्स, मल्च, स्प्रे पम्प, खाद, बीज, कीटनाशक, वर्मी कम्पोस्ट, ऑर्गेनिक खाद एवं दवाई के लिए सम्पर्क करें।
चन्द्रभागा रोड़, झालरापाटन, जिला-झालावाड़ (राज.) 326023

कृषि प्रौद्योगिकी प्रबन्धन एवं गुणवत्ता सुधार केन्द्र

(Agriculture Technology Management and Quality Improvement Centre -ATMQIC)

प्रसार शिक्षा निदेशालय

कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

स्थापना के उद्देश्य

- नवोन्मेषी कृषि प्रौद्योगिकी का प्रभावी हस्तानान्तरण
- किसान कॉल सेन्टर की स्थापना
- कृषि तकनीकी संग्रहालय की स्थापना
- कृषि संसाधन केन्द्रों की स्थापना
- कृषि आदान व उत्पाद बिक्री केन्द्र की स्थापना
- कृषक उपयोगी साहित्य प्रकाशन
- विश्वविद्यालय द्धारा विकसित विभिन्न तकनीकियों का संकलन एवं प्रदर्शन

किसान कॉल सेन्टर
0744-2662700

स्वामी प्रकाशक : डॉ. एस.के. जैन, निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Website : https://aukota.org
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com
दूरभाष : **0744- 2326727**

पुस्त प्रेष्य

स्वामी निदेशक प्रसार शिक्षा, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा प्रकाशक डॉ. एस.के. जैन, मुद्रक श्री जमील अहमद, मैसर्स डायमण्ड प्रिन्टर्स, शॉप नं. 2, काली मस्जिद के पास, नई धानमण्डी, कोटा से मुद्रित एवं निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, बोरखेड़ा, कोटा, राज. से प्रकाशित, संपादक डॉ.एस.के. जैन

अभिनव कृषि

वर्ष–5 अंक–1 मार्च–2023 रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869

संरक्षक

डॉ. अभय कुमार व्यास
कुलपति, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

सम्पादक मण्डल

डॉ. एस.के. जैन
निदेशक प्रसार शिक्षा
प्रधान संपादक एवं प्रकाशक

डॉ. के.सी.मीना
सह आचार्य (प्रसार शिक्षा)
संपादक एवं समन्वयक

डॉ. राकेश कुमार बैरवा
सह आचार्य (शस्य विज्ञान)
संपादक

डॉ. डी.के. सिंह
आचार्य (उद्यान विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. महेन्द्र सिंह
आचार्य (पशुपालन)
सह–संपादक

डॉ. सेवाराम रूण्डला
विषय विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान)
सह–संपादक

श्रीमती गुंजन सनाढ्य
विषय विशेषज्ञ (गृह विज्ञान)
सह–संपादक

सुश्री सरिता
तकनीकी सहायक
सह–संपादक

मनोनीत सलाहकार मण्डल

डॉ.प्रताप सिंह
निदेशक, अनुसंधान

डॉ. आई.बी. मौर्य
अधिष्ठाता, उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़

डॉ. एम.सी. जैन
अधिष्ठाता, कृषि महाविद्यालय, कोटा

डॉ. मुकेश चन्द्र गोयल
निदेशक, प्राथमिकता, निगरानी एवं मूल्यांकन

सदस्यता शुल्क

- ☞ त्रैमासिक (प्रति अंक) 30 रू.
- ☞ वार्षिक (चार अंक) 100 रू
- ☞ आजीवन (15 वर्ष)1000 रू.

विज्ञापन दरें

(i)	अन्तिम सम्पूर्ण (रंगीन)	रू. 10,000/-
(ii)	प्रथम एवं अन्तिम पृष्ठ के पीछे (रंगीन)	रू. 6,000/-
(iii)	अन्तिम आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 5,000/-
(iv)	प्रथम एवं अन्तिम पृष्ठ के पीछे आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 3,000/-
(v)	अन्दर का सम्पूर्ण पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 4,000/-
(vi)	अन्दर का आधा पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 2,000/-

नोट : यदि विज्ञापन वर्ष के सभी चार अंकों के लिए दिया जाता है तो उपरोक्त दरों में 25 प्रतिशत की कमी की जायेगी।

सदस्यता एवं नवीनीकरण हेतु

खाता धारक	: DEE, Agriculture University, Kota
बैंक	: ICICI BANK, Nayapura, Kota
खाता संख्या	: 687801700345
IFSC	: ICIC0006878

लेख एवं सुझाव भेजने का पता

"अभिनव कृषि"
प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
बोरखेड़ा, बारां रोड़ कोटा (राजस्थान) – 324001
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com दूरभाष : 0744- 2326727

प्रकाशक: प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
मुद्रक : डामयण्ड प्रिन्टर्स, नई धानमण्डी, कोटा (राज.) मो. 9414231079

नोट– "अभिनव कृषि" में आलेख प्रकाशन हेतु लेखकों का सदस्य होना अनिवार्य है तथा लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

वर्ष–5 अंक–1

अभिनव कृषि

मार्च–2023

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	भारत के पौष्टिक धान्य– उत्तम स्वास्थ्य का पायदान गुंजन सनाढय एवं एस. के. जैन	1-4
2.	कलिहारी की उन्नत खेती आर.बी. दुबे, गरिमा गौतम, दिक्षा चौहान एवं दीपेश माथुर	5-6
3.	श्री अन्न ज्वार की वैज्ञानिक खेती सेवाराम रूण्डला, प्रदीप कुमार, राजेश कुमार एवं टी.सी. वर्मा	7-9
4.	जलवायु अनुकुल धान्य बाजरा की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा में भुमिका चारू शर्मा, दीपक चतुर्वेदी एवं राजवीर चौधरी	10-11
5.	बाजरा उत्पादन की आधूनीक तकनीक सुश्री मनोज, हरफूल मीणा, राजेन्द्र कुमार यादव एवं के. सी. मीना	12-13
6.	बाजरा की उन्नतशील प्रजातियां खजान सिंह, वर्षा गुप्ता, के सी मीना एवं राजेश कुमार	14-15
7.	बाजरे के प्रमुख रोग एवं उनका प्रबंधन हनुमान सिंह	16-17
8.	कांगणी (*सिटेरिया इटेलिका*) की उन्नत खेती पारूल गुप्ता, अभय दशोरा एवं हिमांसुमन	18-19
9.	रागी की उन्नत खेती से पौषण एवं वित्तिय सुरक्षा हरफूल मीणा, सुश्री मनोज, शंकर लाल यादव एवं राकेश कुमार बैरवा	20-21
10.	जायद उड़द की वैज्ञानिक खेती से अधिक लाभ कमाऐं नरेश कुमार शर्मा, एस.एन. मीणा एवं धर्म सिंह मीणा	22
11.	एकीकृत कृषि प्रणाली द्वारा सीमांत किसानों की आय में वृद्धि देवी लाल किंकरालियाँ, माया चौधरी, एवं अनुज कुमार	23-24
12.	फसलों के उत्पादन एवं गुणवत्ता हेतु सर्वोत्तम है जिप्सम नरेश कुमार शर्मा, एस.एन. मीणा एवं धर्म सिंह मीणा	25-26
13.	राजस्थान में पशुधन की अपार संभावनाएं अतुल शंकर अरोड़ा एवं के.सी. मीना	27-28
14.	मृदा परीक्षण महत्व और उपयोगिता प्रमोद, वंदना कुमारी एवं अनिल कुल्हैरी	29
15.	जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव एवं प्रबन्धन कमलेश कुमार, अशोक कुमार, कुलदीप कुमार एवं अनिता कुमावत	30-33

डॉ. एस.के. जैन
निदेशक (प्रसार शिक्षा)

Directorate of Extension Education
प्रसार शिक्षा निदेशालय
AGRICULTURE UNIVERSITY, KOTA
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Borkhera, Baran Road, Kota 324 001 (Raj.)
बोरखेडा, बारां रोड, कोटा 324001 (राज.)

प्रधान संपादक की कलम से.....

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन से देश में अधिकांश फसलों की उत्पादकता तथा किसानों की आर्थिक दशा पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। साथ ही पिछले कुछ दशकों में खान–पान में बदलाव के कारण अधिकांश जनसंख्या का स्वास्थ्य भी खराब हो रहा है। ऐसे में समय की मांग है कि हम ऐसी फसलों की खेती को बढ़ावा दें, जो विषम जलवायवीय परिस्थितियों, यथा अधिक तापमान व कम पानी में उत्पादन दे, तथा साथ ही उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करे।

मोटे अनाज अथवा कदन्न (मिलेट्स) के अंतर्गत आने वाले खाद्यान्न – बाजरा, ज्वार, रागी, कोदो, कुटकी, सांवा आदि सूक्ष्म पोषक तत्वों (कैल्शियम, लौह, जिंक, आयोडीन, तथा अमीनो अम्ल) से परिपूर्ण होते है। ये ग्लूटेन मुक्त होते है तथा इनका ग्लाइसिमिक इंडेक्स कम होता है अतः ये सिलिएक, मधुमेह तथा हृदय रोगियों के लिए उत्तम माने जाते है। किन्तु खान– पान में बदलाव तथा इनके व्यंजन बनाने में असुविधा के चलते हमारे देश में धीरे– धीरे ये अपनी पहचान खो रहे है ।

अतः इनको 'पोषक अनाज' के रूप में पहचान दिलाने तथा इनका उत्पादन और खपत बढ़ाने की महती आवश्यकता है। मानव पोषण में इनके महत्त्व को देखते हुए भारत के प्रस्ताव पर संयुक्त राष्ट्र संघ की संस्था खाद्य एवं कृषि संघठन (एफएओ) ने वर्ष 2023 को 'अंतर्राष्ट्रीय मोटा अनाज वर्ष' घोषित किया है।

राजस्थान में मोटे अनाज की वर्षा आधारित खेती मुख्य रूप से सीमांत व छोटे कृषकों में तथा कम उपजाऊ भूमि पर प्रचलित है। सरकार ने मोटा अनाज के न्यूनतम समर्थन मूल्य में वृद्धि की है, जो किसानों के लिए एक बड़ा प्रोत्साहन है। मोटे अनाज को अधिक से अधिक प्रचलन में लाने के लिए इनके मूल्य संवर्धित उत्पाद– बिस्किट, कुकीज, नट्स, मठरी, सक्करपारा, खिचड़ी, दलिया इत्यादि को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

अभिनव कृषि के इस विशेष अंक में मोटे अनाज के पोषक महत्त्व, उत्पादन तकनीक, मूल्य संवर्धन, आदि विषयों का समावेश किया गया है। आशा है कि यह अंक कृषकों, कृषि उद्यमियों, कृषि वैज्ञानिकों, विद्यार्थियों व अन्य पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

(एस.के. जैन)

अभिनव कृषि रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869 वर्ष-5, अंक-1 मार्च, 2023

भारत के पौष्टिक धान्य- उत्तम स्वास्थ्य का पायदान

गुंजन सनाढ्य एवं एस. के. जैन
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ मानी जाती है। कृषि की जलवायु पर निर्भरता कृषि की दशा एवं दिशा तय करते है। वर्तमान में जलवायु परिवर्तन के कारण तथा खानपान में बदलाव के चलते हमारे किसानों की आर्थिक दशा और स्वास्थ्य दोनों ही प्रभावित हो रहे हैं। दुनिया की 15 प्रतिशत से अधिक आबादी रखने वाले भारत देश में कृषि के लिए आवश्यक जल संसाधन की उपलब्धता केवल 14 प्रतिशत है। अतः देश में उपलब्ध संसाधनों के अनुरूप कृषि उत्पादन के लिए कम जल में उच्च गुणवत्ता युक्त खाद्यान उत्पादन वाली उन्नत तकनीक नवाचारो को अपनाने की अत्यंत आवश्यकता है।

वर्तमान में अधिकतर भारतीय गेंहूँ तथा चावल पर आधारित भोजन को दैनिक जीवन में लेना पसंद करते हैं, परंतु बदलती जलवायु के कारण किसानों को इनके उत्पादन में समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है फलस्वरूप यह फसलें पर्याप्त लाभ नही दे पा रही हैं साथ ही दोनों फसलो के अधिकाधिक दैनिक प्रयोग ने मानव स्वास्थ्य पर मोटापा और कुपोषण आहार जनित स्वास्थ्य दुष्प्रभावो को जन्म दिया है जो दिन प्रतिदिन वैश्विक आबादी में बढ़ता जा रहा है। बदलते जलवायु परिवेश में कृषि में जलवायु अनुरूप मोटे अनाज का उत्पादन करना आवशयक हो गया है। यह कम पानी और कम समय में उत्पादित होने वाली फसल है, साथ ही पोष्टिकता से भरपूर होने के कारण मानव स्वास्थ्य के लिए भी उत्तम है।

क्या है मोटा अनाज?

मोटा अनाज अत्यधिक परिवर्तनशील छोटे बीज वाली घासों का एक समूह है जो मुख्य रूप से समशीतोष्ण उपोष्ण कटिबंधीय, उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के शुष्क सीमांत क्षेत्रों की भूमि पर उगाया जाता है साथ ही पोषक तत्व की मात्रा ज्यादा होने से (प्रोटीन, रेशों, विटामिन बी तथा खनिजों से भरपूर) होने के कारण मोटे अनाजों को पोष्टिक धान्य भी कहा जाता है। भारत में 16 प्रमुख मोटे अनाज पाए जाते है जिनमें ज्वार, बाजरा, रागी, कंगनी, चीना, कोदो, सांवा, झंगोरा कुटकी, कुट्टू चौला और ब्राउन टॉप मिलेट जैसे मोटे अनाजों का उत्पादन और निर्यात किया जाता है। मोटे अनाजों को दो श्रेणियों के तहत वर्गीकृत किया जाता है प्रमुख कदन्न तथा लघु कदन्न। प्रमुख कदन्नों में ज्वार तथा बाजरा काफी लोकप्रिय हैं बाकि सभी मोटे अनाज को लघु कदन्नों की श्रेणी में रखा गया है।

भारत में पोष्टिक धान्य उत्पादन परिदृश्य

सिंधु कालीन सभ्यता में 3000 ईसा पूर्व पाया जाने वाला यह पहला खाद्यान्न जिसे भोजन के रूप में प्रयोग में लाया गया। विश्व में131 देशों में मोटे अनाज का उत्पादन किया जाता है एशिया एवं अफ्रीका में 60 करोड लोगों का यह पारंपरिक भोजन हैं। भारत में सदियों से पोष्टिक धान्य की खेती की जा रही है। भारत में शुष्क भूमि का बड़ा क्षेत्र होने के कारण मोटा अनाज यहां की प्रमुख फसल है, कन्याकुमारी के तटीय मैदानी इलाकों से उत्तराखंड की तलहटी तक बड़े पैमाने पर पोष्टिक धान्य का उत्पादन होने के कारण भारत को पोष्टिक धान्य के उत्पादन में वैश्विक चार्ट में शीर्ष पर रखा गया है। भारत के शीर्ष पांच मोटा अनाज उत्पादक राज्य हैं राजस्थान, महाराष्ट्र, कर्नाटक, गुजरात और मध्य प्रदेश। भारत में पोष्टिक धान्य सभी राज्यों का मुख्य भोजन है और यहां की संस्कृति व जीवन शैली से जुड़ा हुआ है। तमिलनाड, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश छोटे पोष्टिक धान्य की पैदावार हेतु तथा राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात बड़े पोष्टिक धान्य के उत्पादन के लिए लोकप्रिय हैं।

भारत मे मोटे अनाज की अनुकूलता

कृषि और खाद्य सुरक्षा में मोटे अनाज (ज्वार, बाजरा, कोदो आदि) या मिलेट का विशेष महत्व है। संयुक्त राष्ट्र ने भी इसके वैश्विक प्रसार के लिए प्रयास शुरू कर दिए हैं। भारत के लिए इसका महत्व और भी ज्यादा इसलिए है, क्योंकि देश में पोषण का स्तर बहुत कम है। उच्च पोषण स्तर के अलावा मोटे अनाजों को बढ़ते धरती के तापमान में जीवन रक्षक माना जा सकता है। यही कारण है कि भारत ने 2021 की संयुक्त राष्ट्र बैठक में 72 देशों के सहयोग से 2023 को 'अंतरराष्ट्रीय मिलेट वर्ष' घोषित करने का प्रस्ताव रखा है

- भारत में मरुस्थल की विस्तृत श्रृंखला है, वही मोटा अनाज शुष्क भूमि जलवायु के अनुकूल होने से शुष्क क्षेत्रो के किसानों के लिए उपयुक्त फसल की श्रेणी और पसंद में आता है।
- चावल, गन्ना और गेंहू की तुलना में मोटे अनाजो में कम पानी की आवश्यकता होने से छोटे किसानों के लिए उपयुक्त फसल माना जाता है।
- सीजीआईएआर के अनुमान अनुसार जलवायु परिवर्तन के कारण आने वाले दशक में गेहूं चावल और मक्का का वैश्विक उत्पादन 15 से 20 प्रतिशत तक घट सकता है। ऐसे में धरती के बढ़ते तापमान के साथ अनुकूलन कर सकने वाला मोटा अनाज भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए अपरिहार्य बनता जा रहा है।
- विश्व में मोटे अनाजों के अग्रणी उत्पादकों में एक भारत का वैश्विक उत्पादों में अनुमानित हिस्सा लगभग 41 प्रतिशत है। एफएओ के अनुसार वर्ष 2020 में मोटे अनाजों का विश्व उत्पादन 30. 464 मिलियन मीट्रिक टन हुआ जिसमे भारत का हिस्सा 12. 49 मिलियन मीट्रिक टन था।।

- इसके बावजूद केवल मोटा अनाज निर्यात का हिस्सा कुल उत्पादन का एक प्रतिशत है। भारत के मोटे अनाज और उसके मूल्य संवर्धित उत्पादो का निर्यात बहुत कम है। इसके निर्यात एवं लोकप्रियता को बढ़ने के लिए भारत सरकार द्वारा अनेक प्रयास किए जा रहे है।

पोष्टिक धान्य के पोषक मान एवं स्वास्थ्य लाभ : अनाज दैनिक भारतीय आहार में मुख्य घटक एवं मात्रात्मक दृष्टि से भी अधिक स्थान रखता है मोटा अनाज अपने पोषण गुणों के कारण दैनिक आहार में पोषण के साथ–साथ उत्तम स्वास्थ्य हेतु महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। ग्लूटेन मुक्त एवं कम ग्लाइसेमिक सूचकांक होने से अन्य अनाजों की तुलना में मोटे अनाज में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा कम पाई जाती है जो मधुमेह मोटापा हाइपरलिपिडेमिया आदि जैसे विकारों के प्रबंधन में मदद करता है।

तालिका : पौष्टिक धान्य के पौषक मान एवं स्वास्थ्य लाभ

अनाज	प्रोटीन (ग्रा.)	रेशा (ग्रा.)	कैल्शियम (ग्रा.)	फोस्फोरस (ग्रा.)	लोहतत्व (मि.ग्रा.)	केरोटिन (माइक्रोग्रा.)
बाजरा	11.6	1.2	42.0	296.0	8.0	132.0
कंगनी	12.3	8.0	31.0	290.0	2.8	32.0
रागी	7.3	3.6	344.00	283.0	3.9	42.0
सावा	7.7	7.6	17.0	220.0	9.3	0.00
ज्वार	10.4	1.6	25.0	222.0	4.1	47.0

- शरीर का इम्यून सिस्टम मजबूत बनाने एवं रोगप्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्वों की उपलब्धता होने से नियमित मिलेट खाना बहुत ही लाभदायक माना जाता है। यह पाचन क्रिया को सुधारने के साथ साथ पेट सम्बंधित विकारो एवं समस्याओं को ठीक करने का काम करते है।
- मोटे अनाज में अधिक मात्रा में फाइबर और ट्रिप्टोफैन (एमिनो एसिड) पाया जाता है। जब मुख्य भोजन में मिलेट का सेवन करते हैं तो फाइबर और ट्रिप्टोफैन के कारण वह धीमी गति से पचता है। जिससे पेट लम्बे समय तक भरा हुआ महसूस होता है एवं ज्यादा खाने से बच जाते हैं और मोटापा या वजन घटाने में मदद मिलती है।
- हमारे शरीर के लिए प्रतिदिन 38 ग्राम फाइबर की आवश्यकता होती है। मोटे अनाज में उपलब्ध फाइबर की प्रचुर मात्रा (25 से 30 प्रतिशत) का प्रतिदिन दिन के तीन समय के भोजन में सेवन से शरीर के अंदर होने वाली रासायनिक क्रियाओं को ठीक करने एवं शरीर में उत्पन्न होने वाली ग्लूकोज की मात्रा को नियंत्रित करने में कारगर होता है।
- मोटे अनाजो में पाए जाने वाले मैग्नीशियम और पोटैशियम पोषक तत्व, कोलेस्ट्रॉल लेवल को बढ़ने से रोककर ब्लड प्रेशर कभी नियंत्रित करने में मददगार होते है। अतः ह्रदय से जुड़े रोगों से बचाव एवं दिल को स्वस्थ व मजबूत रखने के लिए मिलेट का सेवन करना चाहिए। मिलेटस में मौजूद पोषक तत्व शरीर को एसिडिटी से छुटकारा दिलाने में सहायक होते हैं। मिलेट में पाए जाने वाले तत्व शरीर की अम्लता को प्राकृतिक रूप से दूर करते हैं एवं इसमें मौजूद पोषक तत्व शरीर के एसिड को न्यूट्रल करने में कारगर होते हैं।
- सभी मोटे अनाज नियासिन (विटामिन बी3) का भी अच्छा स्रोत होते एवं इस विटामिन को प्राप्त करने का प्राकृतिक स्रोत है। नियासिन (विटामिन बी3) मानव शरीर की क्रियाओं के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होता है।
- मोटे अनाज में उपलब्ध प्लांट लिगनेन पाचन तंत्र में पहुंचने के बाद एनिमल लिगनेन में बदल जाता है। जो स्टेरॉयड जैसी सरंचना का फाइटोएस्ट्रोजेन निर्माण करते घुलनशील लिगनेन शरीर के ब्लड में घुलकर वहाँ के प्रदूषण को साफ करते हैं और अघुलनशील लिगनेन शरीर के पाचन तंत्र को साफ करते है, फलस्वरूप शरीर मे प्रदूषण करने वाली कोशिकाएं नही पनप पाती है। अतः कैंसर से छुटकारा दिलाने में मदद करते हैं।

प्रमुख पौष्टिक धान्य एवं इनका उपयोग

बाजरा – बाजरे में लोह तत्व का उच्च पोष्टिक मान रक्ताल्पता की बढ़ रही समस्या से निपटने में कारगर उपाय है। बाजरा पौष्टिक रूप से अन्य अनाज से बेहतर है परन्तु भोजन के रूप में इसका उपयोग अभी भी ज्यादातर पारंपरिक उपभोक्ताओं और निम्न आर्थिक स्तर की आबादी तक ही सीमित है। पारंपरिक खाद्य बाजरा की उपेक्षा कर गेहू के आटे का उपयोग करने से मधुमेह एवं ह्रदय समस्याओं को जन मानस में प्रायः देखा जाने लगा है जिसका प्रमुख कारण गेहू में फाइबर की अनुपलब्धता होना है जो कि बाजरा का प्रमुख पोषक घटक है यह इन बीमारियों को नियंत्रित करता है बाजरे में लगभग 11.6 ग्राम प्रोटीन 67.5 ग्राम कार्बोहाइडेट 8 मि.ग्रा लौह तत्व और 132 माइक्रोग्राम कैरोटीन मौजूद होता है।

जलवायु अनुकुल फसल: बाजरे की फसल प्रतिकूल जलवायु, कीटों एवं बीमारियों के लिये अधिक प्रतिरोधी है, अतः यह बदलते वैश्विक जलवायु परिवर्तनों में भुखमरी से निपटने हेतु एक स्थायी खाद्य स्रोत साबित हो सकती है। व इसके अलावा इस फसल की सिंचाई के लिये अधिक जल की आवश्यकता नहीं होती है जिस कारण यह जलवायु परिवर्तन एवं लचीली कृषि–खाद्य प्रणालियों के निर्माण के लिये एक स्थायी रणनीति बनाने में सहायक है।

पोषण सुरक्षा: बाजरे में आहार युक्त फाइबर भरपूर मात्रा में विद्यमान होता है, इस पोषक अनाज (बाजरे) में लोहा, फोलेटएकैल्शियम, जस्ता, मैग्नीशियम, फास्फोरस, तांबा, विटामिन एवं एंटीऑक्सिडेंट सहित अन्य कई पोषक तत्त्व प्रचुर मात्रा में होते हैं। ये पोषक तत्त्व न केवल बच्चों के स्वस्थ विकास के लिये महत्त्वपूर्ण हैं, बल्कि वयस्कों में हृदय रोग और मधुमेह के जोखिम को कम करने में भी सहायक होते हैं। ग्लूटेन फ्री एवं ग्लाइसेमिक इंडेक्स की कमी से युक्त बाजरा मधुमेह के पीड़ित व्यक्तियों के लिये एक उचित खाद्य पदार्थ है, साथ ही यह हृदय संबंधी बीमारियों और पोषण संबंधी दिमागी बीमारियों से निपटने में मदद कर सकता है।

आर्थिक सुरक्षा: बाजरे को सूखे, कम उपजाऊ, पहाड़ी, आदिवासी और वर्षा आश्रित क्षेत्रों में उगाया जा सकता है। इसके अलावा बाजरा मिट्टी की पोषकता के लिये भी अच्छा होता है तथा इसकी फसल तैयार होने में लगने वाली समयावधि एवं फसल लागत दोनों ही कम हैं। इन विशेषताओं के साथ बाजरे के उत्पादन के लिये कम निवेश की आवश्यकता होती है और इस प्रकार यह किसानों के लिये एक स्थायी आय स्रोत साबित हो सकता है।

राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रो में बाजरा रोटी एवं राब ग्रामीण थाली का प्रमुख हिस्सा है परन्तु शहरीकरण व्यवस्था ने इस पारंपरिक भोजन को फास्ट फूड से प्रतिस्थापित किया हैं बाजरे का स्थान गेंहूँ और चावल ने लेकर उत्पादन और खपत में बड़ा अंतर उत्पन्न कर दिया है गर्म शीतकालीन पेय रूप में प्रसिद्ध बाजरा राब गले को रहत देने के साथ प्रोटीन, आयरन और फाइबर से भरपूर होने के साथ प्रतिरक्षा को बढाता है आजकल बाजरे का इस्तेमाल कई औद्योगिक उत्पादों में किया जाता है। बाजरे की प्रसंकरण तकनीक में नए अनुसंधान जारी है जिनसे बेहतर स्वाद लम्बी समयावधि तक रहने वाले रेडी तो इट उत्पाद तैयार हो सके। हैदराबाद स्थित भारतीय कदन्न मोटा अनाज अनुसंधान संस्थान द्वारा कई नव तकनीको का अविष्कार किया गया है। अप्रैल 2022 में एशिया के सबसे बड़े अंतरराष्ट्रीय खाद्य एवं आतिथ्य मेला के दौरान कृषि एवं प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण, एपीडा ने 5 रुपये से 15 रुपये तक की किफायत दरों पर मिल्लेट्स उत्पादों की सीरीज लॉन्च की। बाजरे से बने सभी उत्पाद ग्लूटेन मुक्त 100 फीसद नैचुरल हैं। लॉन्च किए गए उत्पादों में , बिस्कुट, नमकीन, उपमा, पोंगल खिचड़ी और माल्ट शामिल हैं।

रागी : रागी को भारतीय मूल का अनाज माना जाता है रागी खनिजों का भी एक अच्छा स्रोत है। दूसरे अनाजों की तुलना में इसमें कैल्शियम की मात्रा 5 से 30 गुना ज्यादा होती है। इसमें फॉस्फोरस, पोटैशियम और लोहा भी अच्छी मात्रा में होता है। हड्डियों की घनता और उनके स्वास्थ्य के लिये कैल्शियम तो बहुत महत्वपूर्ण है ही। भोजन के अलावा फूड्स सप्लीमेंट्स लेने वाले लोगों के लिये फिंगर मिलेट एक ज्यादा स्वास्थ्यप्रद विकल्प है, खास तौर से उन लोगों के लिये जिन्हें ऑस्टियोपोटोसिस है, या हीमोग्लोबिन की कमी की समस्या है। यूनाइटेड स्टेट नेशनल एकेडेमीज द्वारा प्रकाशित अध्ययन ''द लास्ट क्रॉस ऑफ अफ्रीका'' में बताया गया है कि फिंगर मिलेट एक सुपर अनाज बन सकता है सभी मुख्य फसलों में ये अनाज सबसे ज्यादा पोषण देने वाला है'। उगांडा और दक्षिणी सूडान में लोग दिन में एक ही बार खाना खाते हैं, पर उनका शरीर स्वस्थ्य और गठीला रहता है जो फिंगर मिलेट की वजह से है। फिंगर मिलेट में एन्टीऑक्सीडेंट्स खूब अच्छी मात्रा में होते है। फिंगर मिलेट के दानों की छाल में छुपे फेनोलिक एसिड्स, टैनिन्स और फ्लेवोनॉइड्स में बहुत असरदार एन्टीऑक्सीडेंट्स गुण होते हैं। सामान्य रूप से ये देखा गया है कि बाजरा या गेहूँ खाने वालों की तुलना में मिलेट खाने वालों में ग्रासनली का कैंसर होने की घटना कम होती है।

ज्वार : ज्वार विश्व के शुष्क प्रदेशों में उगाई जाने वाली एक पारंपरिक फसल है यह गर्म मौसम वाली कीट एवं रोग प्रतिरोधी जलवायु अनुकूल फसल है उत्पादित अनाजों में इसका पांचवा तथा भारत में इसका चौथा स्थान है। यह विश्व की खाद्य अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसकी पौष्टिक संरचना में मुख्यतः यह कैल्शियम तथा पोटेशियम जैसे खनिज लवणों का मुख्य स्त्रोत होने के कारण प्रमुख आहार में गेंहूँ तथा चावल से अच्छी फसल मानी जाती है। इसे विशेषकर इसके प्रोटीन विटामिन ऊर्जा तथा खनिज तत्वों के लिए जाना जाता है। इसमें आयरन जिंक सोडियम की मात्रा भी पर्याप्त में पाई जाती है अतः कुपोषण को दूर करने के लिए इस खाद्य फसल का प्रयोग किया जा सकता है साथ ही प्रदाय समस्याओं शरीर के वजन को नियंत्रण करने और गठिया की समस्या को समाधान करने में भी इसका प्रयोग किया जा सकता है राजस्थान में ज्वार का उत्पादन वृहद स्तर पर किया जाता है अतः प्रदेश की कुपोषण समस्या के समाधान के लिए ज्वार के उत्पाद एक बेहतर विकल्प हो सकते हैं ज्वार से विभिन्न तरह के उत्पाद बनाए जा सकते हैं जो पौष्टिकता के साथ स्वाद भी लिए होते हैं ज्वार औद्योगिक उपयोग अन्य मोटे अनाजों की तुलना में अधिक होता है। इसका उपयोग शराब उद्योग डबलरोटी उत्पादन में उद्योग गेंहूँ संयोजन में किया जाता है। व्यापारिक रूप से शिशु आहार बनाने वाले उद्योगों में ज्वार चवली तथा ज्वार सोयाबीन संयोजन का इस्तेमाल किया जाता है।

मोटे अनाज की खेती एवं प्रसंसकरण से युवाओं को जोड़ने की तैयारी

- इंस्टीट्यूट ऑफ मिलेट्स न केवल मोटे अनाजों के उत्पादन को बढ़ाने की संभावनाओं पर काम करेगा साथ ही किसानों को मोटा अनाज उगाने के लिए भी ट्रेंड करने का काम करेगा. साथ ही वित्त मंत्री ने कृषि क्षेत्र के तहत कृषि ऋण के लक्ष्य को इस बार बढ़ाने का ऐलान किया है. भारतीय बाजरा अनुसंधान संस्थान को उत्कृष्टता केंद्र के रूप में समर्थन दिया जाएगा.
- भारत के युवाओं को कृषि की तरफ मोड़ने और खेती से जोड़ने के लिए भारत सरकार ने इस बार नए कोष की स्थापना करने का ऐलान किया है. वित्त मंत्री के अनुसार युवा उद्यमियों द्वारा कृषि–स्टार्टअप को प्रोत्साहित करने के लिए एक कृषि त्वरक कोष स्थापित किया जाएगा। कृषि क्षेत्र में मानव संसाधन को ट्रेंड करके लगाने के लिए भी सरकार काम करेगी. किसानों को लोन में दी जा रही छूट इस साल भी जारी रहेगी।
- भारतीय मोटे अनाजों और इसके मूल्य वृधत उत्पादों को प्रोत्साहित करने के लिए प्रत्येक लक्षित देश पर 30 ई–कैटलॉग विकसित किए हैं। इनमें विभिन्न किस्म के भारतीय मोटे अनाजों और निर्यात के लिए उनके मूल्य वर्धित उत्पादों की श्रृंखला सक्रिय निर्यातकों स्टार्टअप एफपीओ और आयातक/खुदरा श्रृंखला/हाइपर मार्केट्स आदि की जानकारी होगी और इसे विदेश स्थित भारतीय दूतावास आयातकों निर्यातकों स्टार्टअप और हितधारकों को भेजा जाएगा।
- सरकार रेडी टू ईट (आरटीई) तथा रेडी टू सर्व (आरटीएस) श्रेणी में नूडल्स पास्ता ब्रेकफास्ट सीरियल्स मिक्स, बिस्कुट कुकीज स्नैक्स मिठाई जैसे मूल्य वर्धित उत्पादों के निर्यात प्रोत्साहन के लिए स्टार्टअप को भी सक्रिय कर रही है। सरकार ने अंतर्राष्ट्रीय बाजार में मोटे अनाजों और उनके मूल्यवर्धित उत्पादों को बढ़ावा देने के लिए आईसीएआर–भारतीय बाजरा अनुसंधान संस्थान (आईआईएमआर) हैदराबाद आईसीएमआर–राष्ट्रीय पोषण संस्थान हैदराबाद सीएसआईआर–केंद्रीय खाद्य प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान (सीएफटीआरआई) मैसूर और किसान उत्पादक संगठनों (एफपीओ) के सहयोग से पांच वर्षीय रणनीतिक योजना तैयार करना प्रारंभ कर दिया है।
- केंद्र ने मोटे अनाज सहित संभावित उत्पादों के निर्यात को गति देने तथा पौष्टिक अनाजों की सप्लाई श्रृंखला में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिए पौष्टिक अनाज निर्यात संवर्धन फोरम बनाया है।

''अभिनव कृषि'' अंकवार प्रकाशित होने वाली विषय सामग्री

अंक	प्रकाशन माह	विषय–विशेषांक
1	जून	खरीफ फसल विशेषांक, खरीफ फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार, प्रबंधन, मृदा एवं जल संरक्षण
2	सितम्बर	रबी फसल विशेषांक, रबी फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार प्रबंधन, उन्नत कृषि उपकरण
3	दिसम्बर	सिंचाई प्रबंधन, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, जैविक खेती, समन्वित कृषि प्रणाली, आधुनिक डेयरी, मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पादन, एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन
4	मार्च	जायद खेती, संरक्षित खेती, हाई–टेक बागवानी, फल–फूल, सब्जी उत्पादन, मृदा प्रबंधन, पशुपालन प्रबंधन, फल सब्जी परिरक्षण एवं खाद्य प्रसंस्करण

कलिहारी की उन्नत खेती

आर.बी. दुबे, गरिमा गौतम, दिक्षा चौहान एवं दीपेश माथुर
राजस्थान कृषि महाविद्यालय, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) – 313001

परिचय : कलिहारी एक बहुवर्षीय आरोही लता हैं। इसका वानस्पतिक नाम ग्लोरिओसा सुपर्बा तथा यह लिलिएसी कुल से सम्बन्ध रखता है। इसे विभिन्न नामों जैसे– सुपर्बलिलि, ग्लोरीलिलि, उल्टाफूल, उलट–चंडाल, संस्कृत में वकरापुष्पी, हिन्दी एवं पंजाबी में कलिहारी, तेलुगु में अग्निशिखा, तमिल में ककिनीजचलम के नाम से भी जाना जाता है। औषधियों में कलिहारी सर्वाधिक मांग वाली औषधि है। इसके कन्दों, पत्तियों, बीजों तथा जड़ों का उपयोग विभिन्न औषधियां तैयार करने में किया जाता हैं। इसके कन्दों, फलों व बीजों में 0.2 से 0.3 प्रतिशत कॉल्चिसिन, ग्लोरिऑसिन क्षारीय द्रव्य, सुगन्धित तेल, बेन्जोइक अम्ल व सेलिसिलिक अम्ल, शर्करा, वसा अम्ल तथा कुछ क्षारीय पदार्थ होते हैं। इस कारण इसकी मांग बढ़ गयी है तथा विदेशों में भी इसकी भारी मांग हैं।

वानस्पतिक विवरण : कलिहारी आरोही लता है तथा इसकी औसत ऊँचाई 3.5–6 मी. होती हैं। इसकी पत्तियाँ डंठल रहित, लम्बी, नौकादार, घुमावदार तथा 6–8 इंच लम्बी होती हैं। पत्तियाँ आरोहण में सहायक होती हैं। फूल 4 से.मी. चौड़े, एकल, आरम्भ में हरे फिर पीले तथा अन्त में चटखदार लाल रंग के हो जाते हैं। इसमें 6 पुंकेसर तथा एक सुनहरे पीले रंग का स्त्रीकेसर होता हैं। इसमें कई बीज होते हैं तथा संकुचित एवं झिल्ली से ढ़के होने के कारण जल्दी नहीं गिरते।

उपयोग : कलिहारी के कन्दों का प्रयोग कृमि नाशक, गठिया रोग, पाइल्स, बलवर्धक एवं शक्तिवर्धक के रूप, सर्पदंश, मूढ़ गर्भपातन तथा वानस्पतिक शोध में भी किया जाता हैं। यह जटिल प्रसव को भी आसान बनाती हैं। कलिहारी का उपयोग कण्ठमाल, वात, वेतना, कुष्ठ अर्श तथा प्रसव उपरान्त आँवल व आँव के टुकड़ों को शरीर से आसानी से बाहर निकालने में होता है।

भौगोलिक विवरण : अफ्रिका, एशिया, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा श्रीलंका कलिहारी के मुख्य उत्पादक हैं। भारत में तमिलनाडु तथा कर्नाटक इसके मुख्य उत्पादक राज्य हैं।

जलवायु : इसके लिये उष्ण तथा नम जलवायु उचित रहती है। मानसून के मौसम में यह स्वतः ही जंगलों में उग जाती है। इसकी खेती के लिए 25–40 डिग्री सेल्सियस तापमान वाले क्षेत्र उपयुक्त माने जाते हैं।

भूमि : कलिहारी सभी प्रकार की मृदाओं में उग सकती है लेकिन जल निकास का उचित प्रबन्ध होना चाहिए। लाल बलुई दोमट मिट्टी जिसकी 5.5–7 पी. एच. हो उपयुक्त मानी जाती है। कठौर मृदा में इसकी खेती नही करनी चाहिए।

खेत की तैयारी : ग्रीष्म ऋतु में वर्षा से पहले खेत की एक गहरी जुताई करनी चाहिए। इस समय खेत में लगभग 15 टन प्रति हेक्टेयर की दर से गोबर की खाद मिला देनी चाहिए। खेत में 60–60 सेमी. पर मेड़ें व नालियां बनानी चाहिए। इन्ही मेड़ों पर कन्दों को रोपित किया जाता है। 125 किग्रा. यूरिया, 300 किग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट तथा 110 किग्रा म्यूरेट ऑफ प्रति हैक्टेयर की दर से जुताई के साथ देना चाहिए।

उन्नत किस्में : कलिहारी की अभी तक तो उन्नत किस्में विकसित नही हुई है इसलिए अच्छी स्थानीय किस्म को ही खेती के लिए चुन सकते हैं।

- **ग्लोरिओसा सुपर्बा :** यह उष्णकटिबंधीय अफ्रीका तथा भारत में पाई जाती हैं। इसकी औसत ऊँचाई 1.5 मी. होती है। पत्तियाँ अण्डाकार तथा 10–12 सेमी. लम्बी होती हैं। फूल रेखीय, लम्बाई में 5–7 सेमी. तथा पीले–लाल रंग के होते है।

- **ग्लोरिओसा रोथशिल्डियाना :** यह उष्ण कटिबन्धीय अफ्रीका में पाई जाती है। यह एक ऊँची आरोही लता हैं। इसकी पत्तियाँ चौड़ी मालाकार तथा लम्बाई में 12–18 सेमी. होती हैं। फूल रेखीय 5–7 मी. लम्बे तथा आधार पर पीले सफेद और किनारों पर लाल रंग के होते हैं।

- **ग्लोरिओसा रिचमंडेन्सिस :** इसकी पंक्तियां 15 सेमी. लम्बी व 2–2.5 सेमी. चौड़ी होती है। फूल पीले रंग के होते है व इसकी पंखुडियों पर पतली लाल रंग की धारियाँ पायी जाती है।

- **ग्लोरिओसा कारसोनी :** इसकी लता बड़ी, मोटे पत्ते वाली होती है तथा 20 या अधिक पुष्प धारण करती है। पेरिएंथ खंड 6.25 सेमी. से अधिक लम्बे, पुनरावर्तित व हल्के पीले रंग के होते है। इसकी वर्तिका सीधी होती है तथा 3 वर्तिकाग्र पाये जाते है।

- **ग्लोरिओसा विरसेन्स :** यह एक बौनी प्रजाति है जिसे आमतौर पर मोजाम्बिक लिली के रूप में जाना जाता है। यह लगभग 15 मीटर ऊँची होती है और इसके फूलों का रंग पीला होता है तथा सूर्य के सम्पर्क में आने पर रंग गहरा पीला–लाल हो जाता है।

बुवाई एवं नर्सरी प्रबन्धन : कलिहारी व्यावसायिक स्तर पर भूमिगत "वी" आकार के कन्दों द्वारा प्रसारित की जाती हैं। इसका प्रसारण बीजों द्वारा भी संभव हैं। सबसे पहले नर्सरी में बीजों की बुवाई कर पौध तैयार की

जाती हैं। एक वर्ष बाद इन कन्दों को खोदकर निकाला जाता है तथा 0.1 प्रतिशत बाविस्टीन (फफूंदनाशक घोल) द्वारा उपचारित किया जाता हैं। जुलाई–अगस्त के महीने में जुताई करके मेड़े बनाई जाती हैं, मेड़ों की आपस में दूरी 60 से.मी. रखनी चाहिए तथा कन्दों को 45 सेमी. की दूरी पर 6–8 सेमी. की गहराई पर लगाना चाहिए। ऐसे कन्द जिनका वजन 50–60 ग्राम के मध्य हो, का ही रोपण करना चाहिए। प्रति हैक्टेयर क्षेत्र में रोपाई के लिए 24–29 क्विंटल कन्दों की आवश्यकता होती हैं।

खाद एवं उर्वरक : 15 टन कम्पोस्ट या गोबर की खाद, हरी खाद, केंचुए की खाद आदि जैविक खाद खेत की तैयारी के समय जमीन में मिला देना चाहिए। प्रति हैक्टेयर में खेती हेतु 125 किग्रा. नाइट्रोजन, 50 किग्रा. फॉस्फोरस तथा 75 किग्रा. पोटाश की आवश्यकता होती हैं। नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा रोपाई के समय देनी चाहिए, शेष नाइट्रोजन दो भागों में रोपाई के क्रमश : 30 दिन व 60 दिन बाद देनी चाहिए।

सिचाई : वैसे तो वर्षा ऋतु में उगने से कलिहारी के लिए सामान्य वर्षा पर्याप्त होती हैं किन्तु हल्की कंकरीली जमीन पर फसल की आवश्यकतानुसार सिचाई की जानी चाहिए। पौधे की आरंभिक अवस्था में 4 दिनों के अन्तराल पर सिचाई की जानी चाहिए। कटाई के समय सिचाई नही की जाती किन्तु फसल पकने के समय दो बार सिचाई करनी चाहिए। अत्यधिक सिचाई नही करनी चाहिए अन्यथा इससे फल पकने से पूर्व ही गिर जायेगें।

अन्तराशस्य क्रियायें : समय–समय पर अच्छी निराई–गुडाई कर खरपतवार निकाल देनी चाहिए किन्तु ध्यान रहें कि पौधों का ऊपरी भाग बिल्कुल नही टूटना चाहिए अन्यथा उत्पादन प्रभावित होगा। रासायनिक खरपतवारनाशियों का उपयोग नही करना चाहिए।

फसल सुरक्षा : लिलि व हरी कैटरपिलर से बचाव के लिए 0.2 प्रतिशत मेटासिड 15 दिनों के अन्तराल पर स्प्रे करें। प्रकंद सडांध के लिए 0.2 प्रतिशत बाविस्टीन का उपयोग करें तथा पत्तियों के चित्ती रोग से बचाव के लिए 0.3 प्रतिशत डाइथेन एम –45 स्प्रे करें। कीटों तथा रोगों के नियंत्रण एवं बचाव हेतु जैविक तरीकों का भी प्रयोग किया जा सकता है जिससे रासायनों का दुष्प्रभाव कम रहता हैं धतूरे, गौ–मूत्र, चित्रकमूल तथा नीम से तैयार किये गये जैव–कीटनाशियों का उपयोग किया जा सकता हैं।

फूल एवं फलन : कलिहारी लता में फूल अगस्त–सितम्बर माह में तथा फल अक्टूबर–नवम्बर माह तक आते हैं।

कटाई : रोपाई के 170 से 180 दिनों पश्चात् जब कैप्सूल गहरे हरे रंग के हो जाते हैं तब इनको तोड़ा जाता हैं। बीज प्राप्ति हेतु परिपक्व फूलों की तथा परिष्करण हेतु भूमिगत कन्दों की कटाई की जाती हैं। भूमिगत कन्दों की कटाई रोपाई के 5–6 वर्षों पश्चात् की जाती है। चूंकि मई–जून माह में ये कन्द अपने आप फूटने लगते है, अत: इन्हें खेत में भी छोड़ा जा सकता है तथा जब ये उगने लगे तो इन्हें उखाड़कर दूसरी जगह भी लगाया जा सकता हैं। बीजों की तुलना में कंदों को लगाना ही व्यापारिक रूप से उत्तम रहता है।

उपज: एक हैक्टेयर फसल से 250–300 किग्रा. बीज तथा 150–200 किग्रा छिलके प्राप्त हो सकते है। इसके अलावा पाँचवें वर्ष में 2.5 से 3 टन सूखे कन्द भी प्राप्त हो सकते हैं।

कटाई पश्चात् तकनीकें एवं भण्डारण : केप्सूलों को तोड़कर छाया में 10–15 दिनों तक सुखाना चाहिए। बीजों तथा छिलकों को भी साफ करके, धोकर छाया में कुछ दिन तक सुखाना चाहिए। कंदों को भी साफ करके, धोकर छोटे–छोटे टुकड़े कर लगभग 2 माह तक सुखाया जाता है। दुबारा रोपण करने के लिए आवश्यक कंदों को बालु के ढेर में अंधेरे कमरे में रखते हैं। सूखाने के पश्चात् जब नमी 8–10 प्रतिशत रह जाए तब बीजों, छिलकों को जूट के बोरों अथवा बैग्स में भरकर भण्डारण कर सकते हैं।

❋❋❋

श्री अन्न ज्वार की वैज्ञानिक खेती

सेवाराम रूण्डला, प्रदीप कुमार, राजेश कुमार एवं टी.सी. वर्मा
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

ज्वार (*सोरघम बाईकोलर* एल.) एक मोटा अनाज वाली प्रमुख खाद्यान्न फसल है जो ग्रेमिनी या पोएसी कुल का पौधा है। ज्वार की उत्पत्ति स्थान अफ्रीका, भारत और एबीसीनिया को मानते है। चावल, गेहूं, मक्का व जौ के बाद उत्पादन व क्षेत्रफल के हिसाब से दुनिया की पांचवीं प्रमुख खाद्य फसल ज्वार है। भारत में, ज्वार के अनाज का उपयोग मुख्य रूप से भोजन के लिए किया जाता है, जबकि अनाज की कटाई के बाद ज्वार जानवरों के लिए पोषक चारे के रूप में अत्यधिक मूल्यवान है। अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में ज्वार एक दोहरे उद्देश्य वाली फसल है, क्योंकि अनाज व चारा दोनों क्रमशः मानव व पशु उपभोग के लिए अत्यधिक मूल्यवान हैं। ज्वार की कुछ किस्में विशेष रूप से उत्तर भारतीय राज्यों में पोषण चारे के लिए विशेष रूप से उगाई जाती हैं और अन्य अनाज वाले चारों की तुलना में अत्यधिक स्वीकार्य चारा फसल है। भारत में, यह उत्तर–पश्चिमी, पश्चिमी और मध्य भारत में बड़े पैमाने पर उगाया जाता है।

यह "मोटे अनाजों का राजा" (King of Coarse Grain) एवं "केमल क्रॉप" (Camel Crop) कहलाती हैं। ज्वार को केमल क्रॉप कहा जाता है क्योंकि नमी की कमी होने से इसके पौधों की वृद्धि रूक जाती हैं और ज्यों ही सिंचाई या वर्षा से नमी प्राप्त होती है तो पुनः तेजी से बढ़वार शुरू हो जाती हैं अर्थात् ज्वार में "अस्थाई जल प्लावन सहन क्षमता" पाई जाती है। राजस्थान में ज्वार की खेती दानें व चारे के लिए की जाती हैं तथा बहुत से क्षेत्रों में मुख्य रूप से चारे के लिए की जाती हैं। ज्वार दक्षिणी भारत में रबी व खरीफ दोनों मौसम में उगाई जाती हैं। ज्वार वैज्ञानिक रूप से सी–4 पौधें के रूप में जाना जाता है, भोजन व बायोमास का उत्पादन करने के लिए सौर ऊर्जा व पानी के उपयोग में सबसे अधिक ऊर्जा कुशल फसलों में से एक है। फसल में अंतर्निहित सूखा सहिष्णु प्रकृति है और इसे पर्यावरणीय परिस्थितियों की विस्तृत श्रृंखला के तहत उगाया जा सकता है।

पोषक मूल्य: ज्वार में विभिन्न प्रकार के पोषक तत्व एवं खनिज पाये जाते है जिससे अन्य खाद्यान्न फसलों से अलग पहचान है। साथ ही कदन्न व श्रीअन्न फसलों में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

- ज्वार के दानों में लगभग 72.6 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 11.3 प्रतिशत प्रोटीन, 3.3 प्रतिशत वसा एवं 1.6 ग्राम रेशा होता है। ज्वार लौहा, जस्ता एवं विटामिन–बी समूह का समृद्ध स्त्रोत होता है।
- ज्वार की खेती चारे व दाने के लिये की जाती है। हरे चारे वाली किस्मों की कई बार कटाई कर सकते है।
- अनाज का उपयोग पोल्ट्री फीड के लिए भी किया जाता है। साथ ही ज्वार के दानों से एल्कोहल प्राप्त करते हैं जिससे अलग–अलग उत्पाद बनाये जाते हैं। शर्बत के व्यापक उपयोग व अनुकूलन के कारण, "ज्वार वास्तव में अपरिहार्य फसलों में से एक है" जो मानव जाति के अस्तित्व के लिए आवश्यक फसल है। यह फसल लगभग 100 देशों में उगाई जाती है, और विश्व स्तर पर उत्पादित मिलेट्स के 60 प्रतिशत से अधिक में योगदान देती है। खाद्य पोषण में मिलेट्स की महत्वत्ता को देखते हुये यू.एन.ओ. द्वारा वर्ष 2023 को अन्तर्राष्ट्रीय मिलेट्स वर्ष घोषित कर इसे मनाने की पहल की है।
- ज्वार की खेती में भारत की पहचान विश्व पटल पर है। भारत में सबसे ज्यादा खरीफ ज्वार महाराष्ट्र राज्य में पैदा होती है जबकि रबी ज्वार कर्नाटक राज्य में उगाई जाती है। क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान का भारत में तीसरा स्थान हैं। राजस्थान में मोटा अनाजों के क्षेत्र में बाजरा के बाद ज्वार को उगाया जाता है। राजस्थान में सर्वाधिक ज्वार टोंक एवं सवाई माधोपुर में उगाई जाती हैं। राजस्थान में अन्य जिलों जैसे पाली, अजमेर, कोटा, झालावाड़ में भी उगाई जाती है।
- ज्वार की खेती खाने के लिए मोटे दाने वाले अनाज व हरे चारे के लिए की जाती है। किसान भाई ज्वार के पूरे पौधे का इस्तेमाल पशुओं के चारे में करते है, किन्तु खाने के रूप में इसका इस्तेमाल चपाती व खिचड़ी बनाकर किया जाता है। इसके पौधों की लम्बाई 8 से 12 फीट तक होती है। ज्वार एक मजबूत तने वाली फसल है। पत्तियां लगभग 2.5 फीट लंबी व 5 से.मी. चौड़ाई होती हैं। छोटे फूल पैनिकल्स में उत्पन्न होते हैं जो ढीले से घने तक होते हैं। प्रत्येक फूल समूह में 800–3000 दानें तक होते है।
- ज्वार में मिलने वाली प्रोटीन में लाइसीन अमीनो अम्ल 1.4 से 2.4 प्रतिशत तक मात्रा पायी जाती है, तथा दानों में ल्यूसीन अमीनो अम्ल की मात्रा अधिक होने के चलते ज्वार खाने वाले व्यक्तियों में पैलाग्रा किस्म का रोग देखने को मिल सकता है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में ज्वार की अच्छी फसल प्राप्त हो जाती है। किसान भाई ज्वार की खेती व्यापारिक तौर पर करके अधिक मुनाफा भी कमा रहे है।

उपयोग के आधार पर ज्वार का वर्गीकरण: इसको चार भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. **दाना ज्वार :** मानव व पशु उपयोग के लिये उगायी जाती है।
2. **चारा ज्वार :** सामान्यतया हरे चारे के लिये उगायी जाती है।
3. **मीठी ज्वार :** इससे प्राप्त रस में 16 से 23 प्रतिशत तक शर्करा होती है।

4. झाड़ू या ब्रूम ज्वार : इस प्रकार की ज्वार का उपयोग झाड़ू बनाने के लिये किया जाता है।

इसके पौधे की छोटी पत्तियों में घुरिन नामक ग्लूकोसाइड पाया जाता है जिससे हाइड्रोसायनिक (एच.सी.एन.) अम्ल पैदा होता है। इस अवस्था में ज्वार चारा पशुओं को अधिक मात्रा में खिलाने पर पशुओं की मृत्यु हो सकती है।

हाइड्रोसाइनिक (HCN) अम्ल एवं ज्वार

- ज्वार में प्रारम्भिक अवस्था एवं सूखे की दशा में एक ग्लूकोसाइड निकलता हैं जिसे परूसिक अम्ल अथवा धुरिन कहते हैं। इससे हाइड्रोसाइनिक (HCN) अम्ल निकलता हैं जो कि एक जहरीला पदार्थ हैं। पौधे की छोटी अवस्था में अम्ल का सान्द्रण ज्यादा होता हैं जिसे खाने पर पशु मर जाते हैं।
- पौधों में हाइड्रोसाइनिक अम्ल की मात्रा ऊपर वाली पत्तियों में ज्यादा होती है। ज्वार में इसकी विषाक्तता 0.5 ग्राम या इससे ज्यादा मात्रा होने पर पशुओं की मृत्यु हो जाती है।

- **ज्वार में हाइड्रोसाइनिक अम्ल की अधिकता होने के प्रमुख कारण :** छः सप्ताह की अवस्था की दशा में नई बढ़वार द्वारा, सूखे से उत्पन्न तनाव की दशा के कारण, मृदा में नत्रजन की अधिकता, मृदा में नत्रजन एवं फॉस्फोरस के स्तरों में असंतुलन होने के कारण हाइड्रोसाइनिक अम्ल की अधिकता हो जाती है।
- ज्वार में हाइड्रोसाइनिक अम्ल विषाक्तता के निराकरण के उपायः फसल की नई बढ़वार को पशु को नही खिलायें। नई बढ़वार जब तक 60 से 70 दिन अथवा पुष्पन अवस्था में नहीं पहुचें पशुओं को खिलाने के काम नहीं लेवें तथा चारे को पकने दे ताकि हाइड्रोसाइनिक अम्ल की सान्द्रता में कमी हो सकें।

मृदा : ज्वार की फसल को किसी भी प्रकार की भूमि में उगाया जा सकता है। किन्तु अधिक मात्रा में उत्पादन प्राप्त करने के लिए खेती उचित जल निकास वाली एवं जैविक पदार्थ युक्त बलुई दोमट व चिकनी मृदा में करना अच्छा रहता है। इसके लिए मृदा पी.एच. मान 6.5–7.5 के मध्य होना चाहिए।

जलवायु : यह गर्म जलवायु की फसल है। ज्वार में सूखा सहन करने को क्षमता बहुत अधिक होती हैं। इसकी खेती मुख्यतः खरीफ फसल के रूप में की जाती है। उस दौरान गर्मी का मौसम होता है, गर्मियों के मौसम में उचित मात्रा में सिचाई कर अच्छी पैदावार प्राप्त की जा सकती है। इसे 30 से 75 से.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में भी आसानी से उगाया जा सकता है। ज्वार के बीज सामान्य तापमान पर ठीक तरह से अंकुरित होता है, तथा पौध विकास के समय 25 से 35 डिग्री तापमान होना चाहिए। इसके पौधे अधिकतम 450 तापमान को सहन कर सकते है।

उन्नत किस्में

- **समान्य किस्में :** सी.एस.एच.–5, सी.एस.एच.–14, सी.एस.एच.–16, एस.पी.वी.–245, एस.पी.वी.–346, एस.पी.वी.–96, सी.एस.वी.–13, प्रताप ज्वार–1430, जवाहर ज्वार–741, एस.पी.वी.–1022, सी.एस.वी.–1 (स्वर्णा), सी.एस.वी.–15, पी.सी.एच.–106, हरासोना।
- **संकर किस्में :** CSH-1, स्वर्णा, CSH-5, CSH-9, CSH-13, CSH-14, SPV-245, SPV-346, SPV-96, CSV-17, CSV-13, CSV-15
- **हरे चारे के लिये किस्में :** एम.पी. चरी, राजस्थान चरी–1, राजस्थान चरी–2, हरियाणा चरी, यू.पी. चरी–1, यू.पी. चरी–2, एस.एस.जी.–59–3, एस.पी.एच.–837
- **बहु कटाई वाली चारा किस्में :** मीठी सुडान/एस.एस.जी.–59–3, एम.पी. चरी, पूसा चरी–23, जवाहर चरी–69
- **एक कटाई वाली चारा किस्में :** राज चरी–1, पूसा चरी–6, सी.एस.वी.–15, सी.एस.वी.–20
- **द्विउद्देशीय किस्में :** CSV-13, CSV-15, प्रताप ज्वार–1430
- **देशी किस्में :** वर्षा, टाइप–22, मऊ टाइप–1, मऊ टाइप–2
- **कम मात्रा में HCN अम्ल रखने वाली किस्में :** IS 208 (60 ppm), IS 28450 (75 ppm), IS 288692 (119 ppm)
- **ज्वार की मीठी किस्में :** SSV-53, SSV-84, SSV-96, ISV-69

खेत की तैयारी : भारी मृदा एवं अधिक खरपतवार वाली मृदाओं में गर्मी के मौसम में एक गहरी जुताई करे ताकि वर्षा का जल अधिक मात्रा में संचय हो सके। बुवाई से पूर्व खेत तैयार करने हेतु 2–3 जुताई देशी हल या हैरो से करें तथा पाटा लगाकर बुवाई करे। पहली जुताई के पश्चात् खेत में 15–20 टन गोबर की सड़ी हुई खाद प्रति हैक्टेयर के हिसाब से डालना मृदा स्वास्थ्य के लिए बेहतरीन होता है तथा खाद डालने के तुरंत बाद खेत की जुताई कर खाद को मिट्टी में अच्छे से मिला देवें। अंतिम जुताई के समय क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से मृदा में डालने से मृदा जनित कीट व रोगों का प्रबंधन किया जा सकता है।

बीज दर, बीजोपचार एवं बुवाई

- दाने के लिए बीज दर12–15 किलो प्रति हैक्टेयर, चारे की फसल के लिए 40 किलो प्रति हैक्टेयर।
- खरीफ ज्वार की बुवाई जून व जुलाई में करते हैं।
- बीज को 6–10 ग्राम ट्राईकोडर्मा से बीजोपचारित कर बुवाई करना चाहिए।
- बीज को 4–5 सेमी. से अधिक गहरा नहीं बोना चाहिए। कतार से कतार की दूरी 45 सेमी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 12–15 सेमी. होनी चाहिए। चारे वाली किस्मों में कतार से कतार की दूरी 25–30 सेमी. रखनी चाहिए।

- ज्वार की फसल के साथ दलहनी फसलें सोयाबीन या अरहर बोना अच्छा रहता है।

खाद एवं उर्वरक

- ज्वार एक अधिक पोषक तत्व ग्रहण करने वाली फसल है।
- ज्वार की सिंचित फसल में 80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन और 40 किग्रा फॉस्फेट तथा असिंचित फसल में 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन और 20 कि.ग्रा. फॉस्फेट प्रति हैक्टर देना चाहिए।
- जस्ता की कमी वाली मृदाओं में 15–25 किग्रा जिंक सल्फेट का उपयोग करना चाहिये।

सिंचाई प्रबंधन

ज्वार में सिंचाई के लिए क्रान्तिक अवस्था "फूल आते समय" होती है।

- ज्वार की फसल को बाजरा की तुलना में अधिक पानी की आवश्यकता होती है। ग्रीष्मकालिन फसल में 7–10 दिन के अन्तर पर सिंचाई करनी चाहिए।
- ज्वार की फसल के लिए सामान्य सिचाई उपयुक्त होती है। हरे चारे के लिए की गयी खेती में पौधों को अधिक पानी की जरूरत होती है। इस दौरान 4 से 5 दिन के अंतराल में पानी देना चाहिए ताकि पौधा ठीक तरह से विकास कर सके व फसल कम समय में कटाई के लिए तैयार हो जाए।

खरपतवार प्रबंधन

- बुवाई के 15–20 दिन बाद निराई गुड़ाई कर खरपतवार निकाल देना चाहिए।
- खरपतवार नियंत्रण के लिये एट्राजीन या सीमाजीन का 0.75 कि. ग्रा. सक्रिय तत्व का अंकुरण पूर्व मृदा सतह पर 600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करे।
- खेत में रुखड़ी अथवा स्ट्राईगा का प्रकोप हो वहां पर 2–3 साल तक ज्वार व बाजरा की फसल नही उगावें। खडी फसल में रुखड़ी के नियंत्रण के लिये खरपतवारनाशी 2,4–डी की 0.75–1.0 कि. ग्रा. सक्रिय तत्व की मात्रा का छिड़काव करें।

प्रमुख रोग

1. ज्वार में दाना कण्ड रोग

कवक स्फैसिलोथिका सोर्घायी से होता है। नियंत्रण हेतु फूल से शुरू होने से पहले प्रोपिकोनाजोल 25 प्रतिशत ईसी 0.2 प्रतिशत की दर से छिड़काव करें एवं 15 दिनों के बाद एक स्प्रे पुनः करें।

2. शलथ कंड या अनावृत कंड रोग

स्फैसिलोथिका कुएन्टा कवक द्वारा होता है। इससे बचने के लिए कैप्टान 2 ग्राम/किग्रा या बाविस्टिन 1 ग्राम/किग्रा मात्रा से बीजोपचार करें।

3. ज्वार का शुगरी या शर्करीय रोग: कवक स्फैसिलोथिका सोर्घायी से होता है। इसे "अगर्ट रोग" भी कहते है। हेक्साकोनाज़ोल 5 प्रतिशत ईसी 0.1 प्रतिशत की दर से या नीम की पत्ती का अर्क (ताजा) 15 प्रतिशत की दर से या लहसुन का अर्क 15 प्रतिशत की दर से फूल आने पर और पहले स्प्रे के 10 दिन बाद करें।

4. तना विगलन रोग: यह रोग मैक्रोफोमिना फेजिलाई कवक द्वारा होता है। इसे चारकोल विगलन रोग कहते है।

प्रमुख कीट

1. तना मक्खी : ज्वार के पौधों को प्रारम्भिक 1–4 सप्ताह की अवस्था में नुकसान पहुंचाती है। फसल की जल्दी बुवाई करके पौधों को इसके प्रकोप से बचाया जा सकता है। देरी से बोयी गयी फसल में तना मक्खी का प्रकोप बहुत अधिक होता है। इसके प्रभाव से "डेड हर्ट" नामक रोग हो जाता है।

2. तना बेधक कीट: ज्वार का सबसे भंयकर कीट कहलाता है। 3 ग्राम/किग्रा बीज को थियोमेथौक्सम 70 डब्ल्यू.एस. द्वारा बीजोपचार के बाद मेटासिस्टॉक्स 25 ईसी का एक स्प्रे 2 मिलीलीटर /लीटर या एनएसकेई (5 प्रतिशत) 45 डी.ए.ई. करने पर शूट फ्लाई व तना बोरर की क्षति को काफी कम कर दिया।

कटाई एवं उपज

- ज्वार के पौधें बुवाई के लगभग 110 दिन बाद कटाई के लिए तैयार हो जाते है। जब पौधों की पत्तिया सूखी दिखाई देने लगे उस दौरान पौधों की कटाई कर लेनी चाहिए ताकि दानों एवं चारे की गुणवत्ता अच्छी बनी रह सकें।
- ज्वार की कटाई दानों में लगभग 25 प्रतिशत नमी रहने पर करते हैं। चारे के लिए ज्वार की खेती जायद में की जाती हैं।
- ज्वार की उन्नत तथा संकर किस्मों से 30–45 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक दाने की उपज तथा 80–100 क्विंटल तक सूखी कड़वी या सूखा चारा मिल जाता हैं। हरे चारे की उपज 300–400 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती हैं।

जलवायु अनुकूल धान्य बाजरा की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा में भूमिका

चारू शर्मा, दीपक चतुर्वेदी एवं राजवीर चौधरी
कृषि विज्ञान केंद्र, जैसलमेर , स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)

भारत की मुख्य खरीफ फसलों में से एक बाजरा अपने उच्च पोषण मूल्य के कारण पोषण के पॉवर हाउस के रूप में जाना जाने वाला प्रमुख धान्य है। उष्णकटिबंधीय अर्ध–शुष्क क्षेत्रों खासकर अफ्रीका और भारतीय उपमहाद्वीप में मुख्य रूप से उगाया जाने वाला बाजरा, अनाज की फसलों में, चावल, गेहूं, मक्का, जौ और ज्वार के बाद विश्व उत्पादन के आधार पर छठे स्थान पर है। यह इन सभी अनाज फसलों की तुलना में पोषक तत्वों का अधिक प्रचुर स्रोत भी है । बाजरा का वानास्पतिक नाम *पेनिसिट्म ग्लॉकम* होता है। इसका कुल पोएसी होता है और इसको अंग्रेजी में पर्ल मिलेट कहते हैं। दुनिया भर में 27 मिलियन हेक्टेयर का बाजरा क्षेत्र भारत, दक्षिण एशिया और उप–सहारा अफ्रीका के शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों के 90 मिलियन से अधिक निवासियों की खाद्य सुरक्षा एवं पोषण स्त्रोत के तौर पर कार्य करता है। विश्व के कुल उत्पादन में लगभग 40% की हिस्सेदारी के साथ भारत बाजरे के उत्पादन में दुनिया में अग्रणी है। भारत वर्षभर लगभग 16 मिलियन मैट्रिक टन बाजरे का उत्पादन करता है एवं दूसरा सबसे बड़ा निर्यातक है।

वर्तमान में भारत में उगाई जाने वाली तीन प्रमुख मिलेट फसलों अर्थात मोटा अनाज में ज्वार, बाजरा और रागी शामिल हैं। इसके साथ ही भारत में जैव–आनुवंशिक तौर पर विविध और देशज किस्मों के रूप में छोटे मिलेट्स की विभिन्न किस्मों जैसे– कोदो, कुटकी, चिना और सानवा भी प्रचुर मात्रा में उगाया जाता है। भारत में बाजरा उत्पादक प्रमुख राज्यों में राजस्थान, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, कर्नाटक, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गुजरात और हरियाणा शामिल हैं। यह आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु और पॉन्ड चेरी राज्यों में रबी के मौसम के दौरान उगाया जाता है। यह पंजाब, राजस्थान और भारत की गर्मी के मौसम में भी उगाया जाता है । बाजरा की पैदावार अलग–अलग राज्यों में अलग–अलग वर्षा और मिट्टी के प्रकार और मौसम के बीच होती है। कठोर परिस्थितियों में भी इसके सफल अनाज उत्पादन के कारण, यह अत्यधिक और अनिश्चित जलवायु में एक महत्वपूर्ण अनाज की फसल के रूप में काम करने की क्षमता रखता है।

मिलेट्स एवं उनके प्रकार

मुख्य मिलेटस : इन धान्यों के बीज मोटे होते है। मोटे दाने वाले आनाज को Naked Grain के नाम से भी जाना जाता है। जैसे – बाजरा, रागी, ज्वार, चिना आदि। यह मोटे आनाज सूखा सहन करने की क्षमता रखते हैं। इन फसलों में कीटों से लड़ने की रोगप्रतिरोधक क्षमता होती हैं, जिस कारण कम उर्वरकों और खाद्य की आवशयकता पड़ती है। अतः इन फसलों को उगाने में लागत भी कम आती हैं।

सूक्ष्म मिलेट्स : इन धान्यों के बीज छोटे होते है। छोटे दाने वाले अनाज को Husked grain के नाम से भी जाना जाता हैं। जैसे– कुटकी, कंगनी, कोदो, चावल आदि। मोटे धान्यों की तुलना में लधु धान्यों में अधिक पौष्टिक तत्व पाए जाते हैं।

मानव स्वास्थ्य हेतु पोषण पूरक अनाज रूप में बाजरा की आवश्यकता : पोषण का पावर हाउस कहा जाने वाला बाजरा स्वास्थ्य के लिए बेहद ही लाभकारी माना गया है। बाजरे को मोटा आनाज कहा जाता है लेकिन पोषण तत्वों में समृद्ध होने के कारण इस अनाज को न्यूट्रि– मिलेट्स / न्यूट्रि– सीरियल्स कहा जाता है।

यह ऊर्जा, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, राख, आहार फाइबर, लोहा और जस्ता का एक अच्छा स्रोत है। बाजरे में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा 65.5 ग्राम/100 ग्रामय 56 से 65% स्टार्च के साथ 20 से 22% एमाइलेज और 2.6 से 2.8% मुक्त शर्करा मुख्य रूप से सुक्रोज। यह फाइबर (1.2g/100g) और एमाइलेज गतिविधि में उच्च है। बाजरा में प्रोटीन की मात्रा (11.6/100 ग्राम) होती है, जो गेहूं के बराबर लेकिन चावल से अधिक होती है। ज्वार, गेहूं, चावल से प्राप्त होने वाली (345 से 349 किलो कैलोरी/100 ग्राम) की तुलना में बाजरा ऊर्जा (361 किलो कैलोरी/100 ग्राम) का एक समृद्ध स्रोत है। इसमें कम लाइसिन, ट्रिप्टोफैन, थ्रेओनीन और सल्फर युक्त अमीनो एसिड होते हैं। बाजरा कई पोषक तत्वों के साथ–साथ फिनोल जैसे गैर–पोषक तत्वों से भरपूर होता है. इसमें उच्च ऊर्जा, कम स्टार्च, उच्च फाइबर गुण होते है । बाजरा आसानी से उपलब्ध ग्लूकोज (आरएजी) या चयापचय ऊर्जा के उच्च स्तर से बना है । लिपिड में समृद्ध – लिनोलिक एसिड (18: 2 एन –6) ; पामिटिक एसिड (16: 0) और ओमेगा –3 फैटी एसिड, अघुलनशील फाइबर (10-17%), घुलनशील फाइबर (1-5%) का प्रभावी स्रोत होता है । यह कैल्शियम, लोहा, जस्ता, कैल्शियम, पोटेशियम, मैग्नीशियम, फास्फोरस आदि जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों और विटामिन ए और बी का भी अच्छा स्रोत है,। बाजरा में उच्च संतुलित अमीनो एसिड प्रोफाइल, उच्च पाचनशक्ति और प्रकृति में लस के बिना उच्च प्रोटीन सामग्री (9-13%) होती है। यह फ्यूरोलिक एसिड जैसे फेनोलिक्स का समृद्ध स्रोत है और इसका लो ग्लाइसेमिक इंडेक्स मान होने के कारण गेहूं की तुलना में, इसमें 8–15 गुना अधिक a-amylase गतिविधि है, कम ग्लाइसेमिक इंडेक्स (55) है, और ग्लूटेन मुक्त है। बाजरे में हाईड्रोकैमिकल्स (पोलिफेनोल्स, टेनिल्स, फाईटोस्टेरोल्स) तथा ऐन्टीऑक्सिडैन्ट्स् प्रचुर मात्रा मे मिलते हैं। लेकिन इनमें कुपोषण वाले वे तत्व नहीं मिलते जो प्रसंस्कृत करने से कम हो जाते हैं।

बाजरा उपयोग के स्वास्थ्य फायदे

- बाजरा ग्लूटेन फ्री होता है, जो शरीर के लिए फायदेमंद है ग्लूटेन युक्त भोजन खाने से पाचन में दिक्कत होती है। ग्लूटेन असहिष्णुता वाले लोगों के लिए, यह एक आदर्श विकल्प के रूप में काम कर सकता है।
- फाइबर से भरपूर होने की वजह से बाजरा पाचन क्रिया को सही रखता है, बाजरा खाने से कब्ज की समस्या से छुटकारा मिल सकता है ।
- मधुमेह रोगियों के लिए मधुमेह नियंत्रित करने में सहायक अनाज होता है । बाजरे की रोटी अधिक दिनों तक खाने से इसमें निहित ग्लूकोज धीरे–धीरे निकलता है और इस प्रकार से यह मधुमेह से पीड़ित लोगों को भी अनुकूल पड़ता है। इसका अघुलनशील फाइबर कार्ब्स की धीमी गति से रिलीज में मदद करता है, जिससे लंबे समय तक ऊर्जा प्रदान करता है और रक्त शर्करा को नियंत्रण में रखता है।
- बाजरा में फाइबर की उच्च मात्रा जल्दी लगने वाली भूख को रोकने में मददगार बन कर वजन नियंत्रित करता है । यह जल्दी तृप्ति की

भावना देता है और ऊर्जा की धीमी गति से रिलीज होने से आप लंबे समय तक पेट भरा हुआ महसूस करते हैं।

- बाजरा लसलसे पदार्थ से मुक्त होने के कारण इससे अम्ल नहीं बन पाता और यह आसानी से हजम हो जाता है। पेट संबंधित बीमारियों में फायदेमंद अनाज हैं।
- बाजरा में प्रचुर मात्रा में मिलने वाला लेसीथीन शरीर के स्नायुतंत्र को मजबूत बनाता है।
- बाजरा को सीलिएक रोगों, कब्ज और कई गैर–संचारी रोगों के उपचार में अनुशंसित किया जा सकता है ।

भारत सरकार की पहल पर वर्ष 2023 को संयुक्त राष्ट्र द्वारा अंतर्राष्ट्रीय पोषक अनाज वर्ष (इंटरनेशनल ईयर आफ मिलेट्स) के रूप में घोषित किया गया है। एवं मोटे अनाजों के उत्पादन को बढ़ावा देने की अनुशंसा की जा रही है । अंतर्राष्ट्रीय मिलेट्स ईयर के चलते पूरे विश्व में मोटे अनाजों के प्रति किसानों और आम नागरिकों में जागरूकता पैदा की जा रही है। भारत सरकार इस दिशा में कई कार्यक्रम आयोजित कर रही है। इसका प्रमुख उद्देश्य लोगों में मोटे अनाजों के प्रति जागरूकता पैदा हो और किसान मोटे अनाज की खेती की ओर आगे आएं। भारत में मोटे अनाज वह भूले बिसरे अनाज हैं, जिनको किसानों द्वारा भुला दिया गया था अब एक बार पुनः किसानों को अपने खेतों में मोटे अनाजों को उगाने के प्रति जागरूक किया जा रहा है, जिससे मोटे अनाज खेत से लेकर आम आदमी की थाली में पुनः स्थापित किये जा सके ।

मानव पोषण पर्याय धान्य बाजरे की उपज को बढ़ावा देने की आवश्यकता:

बाजरा के उत्पादन में भारत का विश्व में प्रथम स्थान है। यह भारत में मुख्यतः राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र व पश्चिमी उत्तर प्रदेश में उगाया जाता है। पहले बाजरा को गरीबों का अनाज कहा जाता था किंतु इसके पोषक गुणों के लाभ को देखते हुए इसे पोषण – अनाजों की श्रेणी में रखा गया है । अतः बाजरा उत्पादन को देश में बढ़ावा देने की दिशा में सतत कदमों की आवश्यकता निम्नांकित कारणों से महत्वपूर्ण है ।

जलवायु अनुकूल फसल : बाजरे की फसल प्रतिकूल जलवायु, कीटों एवं बीमारियों के लिये अधिक प्रतिरोधी है, अतः यह बदलते वैश्विक जलवायु परिवर्तनों में भुखमरी से निपटने हेतु एक स्थायी खाद्य स्रोत साबित हो सकती है। इसके तने व पत्तियों का उपयोग पशुओं के चारे के रूप में एवं झोपड़ी आदि बनाने में किया जाता है। यह चारे, साइलेज, घास और ईंधन के लिए पुआल का भी स्रोत है।

कम जल संसाधन आवश्यकता : इसके अलावा इस फसल की सिचाई के लिये अधिक जल की आवश्यकता नही होती है जिस कारण यह जलवायु परिवर्तन एवं लचीली कृषि–खाद्य प्रणालियों के निर्माण के लिये एक स्थायी रणनीति बनाने में सहायक है।

पोषण सुरक्षा: बाजरे में आहार युक्त फाइबर (Dietary Fibre) भरपूर मात्रा में विद्यमान होता है, इस पोषक अनाज बाजरे में लोहा, फोलेट, कैल्शियम, जस्ता, मैग्नीशियम, फास्फोरस, तांबा, विटामिन एवं एंटीऑक्सिडेंट सहित अन्य कई पोषक तत्त्व प्रचुर मात्रा में होते हैं। ये पोषक तत्त्व बच्चों के स्वस्थ विकास, पोषण संबंधी दिमागी बीमारियों से निपटने के लिये महत्त्वपूर्ण हैं । ग्लूटेन फ्री एवं ग्लाइसेमिक इंडेक्स की कमी से युक्त बाजरा डायबिटिक/मधुमेह के पीड़ित व्यक्तियों के लिये एक उचित खाद्य पदार्थ है जो हृदय रोग और मधुमेह के जोखिम को कम करने में भी सहायक होते हैं।

आर्थिक सुरक्षा: बाजरे को सूखे, कम उपजाऊ, पहाड़ी, आदिवासी और वर्षा आश्रित क्षेत्रों में उगाया जा सकता है। यह मिट्टी की पोषकता के लिये भी अच्छा होता है तथा इसकी फसल तैयार होने में लगने वाली समयावधि एवं फसल लागत दोनों ही कम हैं। इन विशेषताओं के साथ बाजरे के उत्पादन के लिये कम निवेश की आवश्यकता होती है, जोकि किसानों के लिये एक स्थायी आय स्रोत साबित हो सकता है।

बहुउपयोगी फसल : बाजरा अच्छा चारा भी होता है और कम समय में बड़ा हो सकता है। इस कारण यह सूखे वाले क्षेत्रों में आरक्षित फसल का काम करता है। इन विशेषताओं/ गुणों के कारण भारत के अनिश्चित मानसून परिदृश्य में इसका उत्पादन के लाभकारी एवं बहुत उपयोगी है।

विविध मिट्टी एवं कम सिचाई क्षेत्र फसल: बाजरे की फसल सिर्फ कम पानी की उपलब्धता वाले/जलवायु में ही नही उग सकती बल्कि यह कम सिचाई वाले और सूखी खेती वाले इलाकों में उगाई जा सकती है। छोटा बाजरा आंध्र प्रदेश के तटीय इलाकों उग सकता है। यह उत्तराखंड और पूर्वोत्तर राज्यों के पहाड़ी इलाकों में भी पैदा हो सकता है। इस प्रकार इसे देश के विभिन्न भागों में अपनाया जा सकता है। यह फसल नमी, तापमान और विभिन्न प्रकार की मिट्टी में, जोकि रेतीली से गंभीर प्रकार की मिट्टी हो सकती है, उग सकता है। यही कारण है कि अपनी आबादी को खाद्य सुरक्षा देने के लिए यह एक महत्वपूर्ण फसल है और इसकी उपज, वितरण और खपत पर नियंत्रण रखा जा सकता है। बाजरा का अंतर्राष्ट्रीय वर्ष वैश्विक उत्पादन बढ़ाने, कुशल प्रसंस्करण और खपत सुनिश्चित करने, फसल चक्र के बेहतर उपयोग को बढ़ावा देने और खाद्य टोकरी के प्रमुख घटक के रूप में बाजरा को बढ़ावा देने के लिए संपूर्ण खाद्य प्रणालियों में बेहतर कनेक्टिविटी को प्रोत्साहित करने के लिए एक अनूठा अवसर प्रदान करने के लिए खड़ा है। मुख्य धारा में शुष्क भूमि कृषि में बाजरे को पुनजीवित करना और खाद्य टोकरी में विविधता लाना भोजन को बनाए रखने, उपभोक्ताओं की पोषण सुरक्षा और ग्रामीण परिवारों की आजीविका सुरक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण है।

तालिका : बाजरा का पोषक मान प्रति 100 ग्राम

ऊर्जा (केलोरी)	प्रोटीन (ग्रा.)	कार्बोहायड्रेट (ग्रा.)	रेशा (ग्रा.)	कैल्शियम (मिग्रा.)	लोह तत्व (मिग्रा.)	फोस्फोरस (मिग्रा.)
361	11.6	65.5	1.2	42	8.0	285

Source: Nutritive value of Indian food, NIN, ICMR 2018

बाजरा उत्पादन की आधूनीक तकनीक

सुश्री मनोज, हरफूल मीणा, राजेन्द्र कुमार यादव एवं के. सी. मीना
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर, जयपुर
कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, कोटा एवं कृषि विज्ञान केन्द्र, अंता, बांरा (राजस्थान)

बाजरे की खेती हमारे देश में सबसे अधिक राजस्थान, गुजरात और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में होती हैं। इसके अलावा अन्य राज्यों जैसे – हरियाणा, मध्य प्रदेश, झारखंड, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र में भी इसकी खेती होती हैं। बाजरा एक ऐसी फसल हैं जो सीमित वर्षा वाले क्षेत्रो एवं बहुत कम उर्वरको की मात्रा के साथ भी अन्य फसलो से अच्छा उत्पादन दे पाती हैं। इसमें उर्जा, प्रोट्रीन विटामिन एवं मिनरल अच्छी मात्रा में पाये जाते हैं। इसकी खेती शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रो मे मुख्य रुप से की जाती हैं, यह इन क्षेत्रो के लिए दाने एवं चारे का मुख्य श्रोत माना जाता हैं। सूखा सहनशील एवं कम अवधि 2–3 माह की फसल हैं जो हल्की दोमट मिट्टी में उगाया जाता हैं। राजस्थान में बाजरा क्षेत्र एवं उत्पादन में एक महत्वपूर्ण फसल हैं व 500–600 मि.मी. वर्षा प्रति वर्ष आवश्यक होती हैं। तीन साल तक के बच्चे यदि 100 ग्राम बाजरे के आटे का सेवन करते है तो वह अपनी प्रतिदिन की आयरन की आवश्यकता की पूर्ति कर सकते हैं। महिलाओं के लिए खून की कमी को पूरा करने का एक सुलभ साधन हैं। भारत वर्ष में ही नही अपितु संसार में महिलाओ एवं बच्चो में आयरन एवं खनिज लवण की कमी पायी जाती, बाजरा आयरन एवं जिंक का एक बेहतर श्रोत हैं इसीलिए इसे आहार का मुख्य साधन माना जाता हैं। बाजरे की खेती से किसान को पशुओं के लिए चारा भी प्राप्त होता हैं। बाजरा के दानों में प्रोटीन की मात्रा 10.5 से 14.5 तक होती हैं। इसमें कार्बोहाइड्रेट खनिज तत्व कैल्शियम केरोटिन राइबोफ्लेविन, विटामिन बी तथा नायसिन एवं विटामिन ई भी भरपूर मात्रा में मौजूद होते हैं।

जलवायु : बाजरा की फसल तेजी से बढने वाली गर्म जलवायु की फसल हैं जो कि 40 – 75 सेमी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रो के लिए उपयुक्त होती हैं। इसमे सूखा सहन करने की अदभुत शक्ति होती हैं। फसल वृद्धि के समय नम वातावरण अनुकूल रहता हैं साथ ही फूल अवस्था पर वर्षा का होना इसके लिए हानिकारक होता हैं क्योंकि वर्षा से परागकरण घुल जाने से बालियो मे कम दाने बनते है। साधारणतया बाजरा उन क्षेत्र मे बोया जाता हैं जहाँ ज्वार को अधिक तापमान एवं कम वर्षा के कारण उगाना संभव नही हो। अच्छी बढवार के लिए 20–28 सेन्टीग्रेट तापमान उपयुक्त रहता हैं।

मिट्टी : बाजरा की खेती के लीए दोमट एवं लाल मृदा अच्छी रहती हैं लेकिन पानी भरने की समस्या के लिए बहुत ही सहनशील हैं।

बाजरा के लिए खेत की तैयार : खरीफ का मौसम बाजरे की खेती के लिए उपयुक्त होता हैं। इसके लिए गर्मी के दिनों में खेत की जुताई कर उसमें से खरपतवार हटा लें। पहली जुताई में 2–3 टन गोबर की खाद प्रति हेक्टर की दर से मिट्टी में मिला देवे। बाजरे की अच्छी पैदावार के लिए एक बार मिट्टी पलटने वाली हल से जुताई करें, इसके बाद दो–तीन बार फिर से जुताई करें। दो–तीन बार जुताई करने के बाद खेतों में बुआई करें। खेती करने जा रहे हैं उस जगह पर दीमक एवं लट का प्रभाव है तो 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से फॉस्फोरस अंतिम जुताई से पहले डाल दें।

उन्नत किस्मे : दाने के लिऐ के.वी.एच. 108, जी.वी.एच. 905 ,एम. पी.एम.एच–17, कवेरी सुपर वोस एंव एच.एच.बी.223। अनाज एंव चारे के लिऐ जवाहर बाजरा–3, जवाहर बाजरा–4 एवं जे.सी.बी. 4। देशी क्षेत्रीय किस्मे हरे चारे के लिए।

बुआई का समय एवं विधि : जिन क्षेत्रों में बारिश बहुत कम होती है, वहां मानसून शुरू होते ही बुआई कर देनी चाहिए। बाजरे की खेती के लिए जुलाई का पहला सप्ताह अच्छा होता हैं। जुलाई के अंत में बुआई करने से 40 से 50 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर फसल का नुकसान होता हैं। बुआई में 5 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बीज का प्रर्याप्त रहता हैं। कतारों में बीज को 2–3 सेमी. गहराई पर बोना चाहिए। लाइन से लाइन 45 से.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 10–15 सेमी. उपयुक्त होती हैं।

फसल चक्र–अर्न्तवर्तीय फसलें : अन्तवर्तीय फसले जैसे बाजरा की दो पंक्तियों के बीच में दो पंक्ति उडद / मूंग की लगाने से उडद / मूंग की लगभग 3 क्विंटल / हेक्टेयर तक अतिरिक्त उपज मिलती हैं। बाजरा की दो पंक्तियो के बीच मे 2 पक्ति लोबिया की लगाने से इससे 45 दिन के अंदर 80–90 क्विंटल / हेक्टेयर तक अतिरिक्त हरा चारा मिल जाता हैं।

पौधे रोपण : बाजरा की समय से बुवाई का नही होना उसके लिए कई कारण उत्तरदायी हो सकते हैं, मानसून का देर से आना, भारी एवं लगातार वर्षा का होना व गर्मी की फसल देर से कटाई आदि। इन परिस्थितियों मे बाजरा की पौध रोपण करना ज्यादा उत्पादन देता हैं बजाय सीधी बीज बुवाई के।

पौध रोपण के लाभ : पौध रोपण से फसल शीध्र पक जाती हैं तथा देरी से कम तापमान का प्रभाव दाने बनने पर नही पडता। अच्छी वृद्धि के कारण अधिक कल्ले एवं वाली निकलती हैं। पौधे की संतुत संख्या रख सकते हैं। रोपे हुए पौधे अच्छी वृद्धि करते है क्योकि लगभग तीन सप्ताह पुराने पौधे लगातार वर्षा स्थिति को अच्छी तरह से सहन कर सकते है। डाउनीमिल्डयू से प्रभावित पौधे को लगाने के समय निकाला जा सकता हैं।

पौधरोपण के लिए नर्सरी तैयार करना : एक हेक्टेयर भूमि के लिए 2 कि.ग्रा. बाजरा को 500–600 वर्ग मी. क्षेत्रफल मे बोना चाहिए। बीज को 1.2 मी. X 7.50 मी (चौडाई X लम्बाई) क्यारियों में 10 सेमी. दूरी एवं 1.5 सेमी. की गहराई पर बोना चाहिए। पौधे की अच्छी बढवार के लिए नर्सरी मे 25–30 कि.ग्रा. कैल्सियम अमोनियम नाईट्रेट का प्रयोग करते हैं। नर्सरी से पौधो को तीन सप्ताह बाद उखाडकर खेत मे रोपण कर देना चाहिए। साथ ही पौधे को उखाडते समय नर्सरी की क्यारियाँ गीली होनी चाहिए जिससे पौधो को उखाडते समय उनकी जडे प्रभावित न होने पायें। पौधे को उखाडने के बाद बढवार बिन्दू से ऊपर के भाग को तोड़ देते हैं जिससे कम से कम वाष्पोत्सर्जन हो सके। साथ ही साथ रोपण उस दिन करना चाहिए जिस दिन वर्षा हो रही हो। यदि वर्षा नही हो रही तो खेत मे सिचांई कर देना चाहिए जिससे पौध आसानी से रोपित हो सकें। एक छेद मे एक पौधे को 50 सेमी. की दूरी व पौधे से पौधे की दूरी 10 सेमी.

रखते हैं। जुलाई के तीसरे सप्ताह से लेकर अगस्त के दूसरे सप्ताह तक रोपणी कर देनी चाहिए। बाजरा की फसल अधिक देर तक पानी भराव को सहन नही कर सकती इसलिये पानी के निकास का उचित प्रबंध करना चाहिए।

सिंचाई प्रबंधन : बाजरा की खेती में अधिक सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती हैं। बारिश नहीं होने पर 10–15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई जरूर करें। ध्यान रहे पौधों में जब फूल एव दाना बन रहा हो तो खेत में नमी की मात्रा कम न हो। जल भराव की समस्या हो तो जल निकासी का समुचित प्रबंध कर दें।

उर्वरक : बुवाई के पहले 40 कि.ग्रा. नत्रजन, 40 कि.ग्रा. फास्फोरस एवं 20 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर देना चाहिए। बोने के लगभग 30 दिन पर शेष 40 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हेक्टेयर देनी चाहिए। उर्वरकों की आधार मात्रा सदैव बीज के नीचे 4–5 सेमी. गहराई पर बोते हैं।

खरपतवार प्रबंधन : बाजरे की फसल के लिए समय पर खरपतवार प्रबंधन करना बहुत ही लाभदायक होता हैं। इसके लिए 1 किलोग्राम एट्राजीन या पेंडिमिथालिन 500 से 600 लीटर पानी में घोल कर प्रति हेक्टेयर के हिसाब से छिड़काव की करे। छिड़काव की यह प्रक्रिया बुवाई के बाद या फिर अंकुरण आने से पहले करते हैं। फसल बुवाई के लगभग 25 से 30 दिनों के बाद खुरपी या कसौला की सहायता से खरपतवार को निकालना उपयोगी होता हैं।

समन्वित कीट एवं रोग प्रबंधन

दीमक : दीमक से बचने के लिए 2–3 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से क्लोरोपाइरीफॉस का पौधों की जड़ों में छिड़काव करें इसके अलावा हल्की वर्षा के समय मिट्टी में मिला कर बिखेर दें।

तना छेदक, ब्लिस्टर बीटल, ईयरहेड एवं केटर पिलर : प्रारंभिक अवस्था मे कीट प्रभावित पौधो को उखाड कर नष्ट कर देना चाहिए। नीमषत का छिडकाव कम से कम 2 बार करने से कीटो की संख्या कम हो जाती हैं। निमोटोड नियंत्रण हेतु नीमखली 200 कि. ग्रा. प्रति हेक्टेयर प्रयोग करे। तना छेदक मक्खी के अधिक प्रकोप होने पर इसके नियंत्रण हेतु कार्बोफ्यूरॉन 3 जी. का 8–10 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर अथवा मोनोकोटोफॉस 30 एस.एल.की 750 एम.एल. मात्रा 600 लीटर पानी मे मिलाकर छिडकाव करें।

मृदु रोमिल आसित : निरोधक प्रजाति जे.वी.–3, जे.वी. 4 प्रजाति बोवें, बीजो को फफूद नाशक दवा एप्रॉन 35 एस.डी. 6 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज से उपचारित कर बोनी करे। प्रभावित पौधो को उखाड देवे, 30 दिन फसल अवधि पर 0.2 प्रति ात मैनकोजैब का छिडकाव मृदुरोमिल आसिता नियंत्रण हेतु या थीरम 0.2 प्रतिशत का छिडकाव 3 बार 50 प्रतिशत फूल बनने पर करे।

कंड़वा रोग : जे.बी.एच.–2, जे. बी.एच.–3 एवं आई.सी.एम.बी. 221 प्रजातियो में रोग का प्रभाव कम होता हैं।

अर्गट : इस रोग से बचाव के लिए फसल की बुआई सही समय पर करें। प्रमाणित बीज का ही प्रयोग करें। बीज को 10 प्रतिशत नमक के घोल में डालकर अलग कर देना चाहिए। उसके बाद बीजों को धोकर साफ करें तथा सुखाकर बुवाई करें।

कटाई एवं भण्डारण : फसल पूर्ण रुप से पकने पर कटाई करें फसल के ढेर को खेत मे गहाई के बाद बीज की ओसाई करे तथा दानो को धूप मे अच्छी तरह सुखाकर भण्डारित करें।

उपज : सिंचित अवस्था में खेती करने पर 30 – 35 क्विटल दाना व 100 क्विटल प्रति हेक्टेयर सूखी कडवी मिलती हैं। हाईब्रिड प्रजातियॉ लगाने से 40–45 क्विटल तक दाना की उपज प्राप्त होती हैं। वर्षा धारित खेती मे 12–15 क्विटंल तक दाना व 70 क्विटल तक सूखी कडवीं प्राप्त होती हैं।

बाजरा खाने के फायदे

1 हृदय को स्वस्थ रखने में बाजरे का आहार के रूप में उपयोग करें जो पौष्टिकता से भरपूर हो। इसमें पर्याप्त मात्रा में मैग्नीशियम एवं पोटेशियम पाया जाता हैं। यह शरीर के रक्त प्रवाह को सुचारू रूप से चलाने का काम कर सकता है जिसकी वजह से हृदय रोग होने का खतरा नहीं रहता।

2 बाल गिर रहे हैं तो इसको ठीक करने के लिए आहार में बाजरे की रोटी उपयोग करें। इसमें काफी अधिक मात्रा में प्रोटीन पाया जाता हैं जो बालों की जड़ों को मजबूती देने के साथ–साथ उन्हें गिरने से रोकता है।

3 डायबिटीज की बीमारी से पीड़ित हैं उन्हें नियमित रूप से अपने खान–पान को सही बनाए रखें। क्योंकि गलत खानपान की वजह से उनकी यह बीमारी और भी अधिक बढ़ सकती हैं। इसके लिए रात के भोजन में गेहूं की रोटी ना खाएं बल्कि उसकी जगह बाजरे की रोटी खाएं।

4 अगर किसी व्यक्ति को अपने अंदर कैंसर के शुरुआती लक्षण नजर आए तो उसे इन्हें अनदेखा नहीं करना चाहिए। ब्रेस्ट कैंसर जैसी बीमारी को कम करने के लिए महिलाओं को चाहिए कि अपने भोजन में बाजरे की रोटी का उपयोग करें। बीजों के अंदर फाइबर की क्वांटिटी काफी ज्यादा होती है जिसकी वजह से स्तन कैंसर की समस्या से राहत पाई जा सकती हैं।

5 कोलेस्ट्रॉल लेवल को नियत्रंण में करने के लिए बाजरे का उपयोग करें।

6 अस्थमा की समस्या हैं उन्हें इससे छुटकारा हासिल करने के लिए बाजरे का सेवन नियमित रूप से करना चाहिए। इसके अंदर ऐसे गुण पाए जाते हैं जो अस्थमा की रोकथाम करते हैं।

बाजरे का उपयोग कैसे करें : बाजरे को अपने आहार में शामिल करने के लिए इसका सही उपयोग करना मालूम होना चाहिए। बाजरे की रोटी, खिचड़ी, मीठी पूरी भी बनाई जा सकती हैं। बाजरा को तिल में मिक्स करके पुआ बनाया जा सकता हैं।

बाजरा खाने के नुकसान : बाजरा एक बहुत ही पौष्टिक आहार माना जाता हैं लेकिन अगर आप इसको गलत तरह से उपयोग करते हैं तो इससे कुछ नुकसान भी हो सकते हैं। बहुत ज्यादा सेवन करने से थाइरोइड और घेंघा की समस्या हो सकती है। गर्मियों में इसका अधिक उपयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि इसकी तासीर गर्म होती हैं। बहुत ज्यादा बाजरा खाने से फेफड़ों में समस्या हो सकती है। गर्भवती महिलाओं को बाजरे का उपयोग नहीं करना चाहिए। इसका अत्यधिक उपयोग किडनी में पथरी की समस्या पैदा कर सकता हैं।

बाजरा की उन्नतशील प्रजातियां

खजान सिंह, वर्षा गुप्ता, के सी मीना एवं राजेश कुमार
कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, कोटा एवं कृषि विज्ञान केन्द्र अन्ता–बारां

बाजरा एक सबसे ज्यादा उगाए और खाए जाने वाला मोटा अनाज है, जिसकी सबसे ज्यादा खेती भारत और अफ्रीका में की जाती है। बाजरा को हर तरह की मिट्टी में उगाया जा सकता है। कम सिंचाई वाले इलाकों के लिए बाजरा (Pearl millet) की फसल वरदान है। इससे मोटे दानों को अलग करने के बाद पशु चारे के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है. इतना ही नही, बाजरा के फसल अवेशेषों से जैव ईंधन भी बनाया जाता है। प्रोटीन, फाइबर, अमीनो एसिड समेत कई न्यूट्रिएंट से भरपूर इस मिलेट से ब्रेड, दलिया, कुकीज समेत कई व्यंजन बनाए जाते हैं। बाजरा की उन्नत किस्में निम्न प्रकार हैं।

संकर : ए एच बी 1200 (2018)
राष्ट्रीय कृषि अनुसन्धान परियोजना औरंगाबाद द्वारा विकसित बाजरा की प्रथम जैव संवर्धित संकर किस्म है, जिसमें जस्ता (45 पी पी एम) व लोहा (89 पी पी एम) प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। यह किस्म मध्यम पकाव अवधि (78 दिन) में पककर 32 क्विंटल औसत उपज देती है। सिट्टा लम्बा गोलाकार, उच्च आयरन की मात्रा, उर्वरकों के लिए अत्यधिक उत्तरदायी किस्म राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, महाराष्ट्र, तेलंगाना व आंध्र प्रदेश के लिए संस्तुत है। डाउनी मिल्ड्यू व तना छेदक के लिए प्रतिरोधी इस किस्म के सिट्टों की लम्बाई 25 से.मी., मोटाई 3.4 से.मी. तथा 1000– दानो का वजन 10.9 ग्राम होता है।

संकर : बी एच बी –1202 (2018)
स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय बीकानेर द्वारा विकसित राजस्थान राज्य के लिए संस्तुत किस्म 76 दिन में पककर 18 क्विंटल औसत उपज देती है। सिट्टा सुगठित शंक्वाकार, दाने पीले भूरे गोलाकार होते है। डाउनी मिल्ड्यू के लिए उच्च प्रतिरोधी किस्म के सिट्टों की लम्बाई 19 से.मी., मोटाई 2.5 से. मी. तथा 1000 दानो का वजन 9.8 ग्राम होता है।

संकर : आर एच बी 223 (2018)
स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय बीकानेर द्वारा विकसित संकर किस्म राजस्थान, गुजरात व हरियाणा राज्यों के लिए संस्तुत है। सहिष्णु किस्म यह शीघ्र पककर 29 क्विंटल औसत उपज देती है। डाउनी मिल्ड्यू, झोंका , कंडुआ, तना छेदक , तना मक्खी व घुन के लिए प्रतिरोधी इस किस्म की बालियाँ लम्बे भूरे बालयुक्त, सिट्टों की लम्बाई 23 से.मी., मोटाई 2.7 से. मी. तथा 1000 दानो का वजन 8.6 ग्राम होता है।

संकर : एच एच बी 299 (2017)
हिसार कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित उच्च आयरन (73.0 पीपीएम) तथा जिंक (41.0 पीपीएम) युक्त संकर बाजरा किस्म मध्यम पकाव अवधि (81 दिन) में पककर 32 क्विंटल औसत उपज देती है। बालियाँ मध्यम लंबे सुगठित व नश्तर आकृति की, दाने भूरे षट्कोणीय, परागकोष का रंग बैंगनी होते हैं। यह किस्म राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, महाराष्ट्र, व तमिलनाडु के लिए संस्तुत है। मुख्य बीमारियों व कीड़ों की प्रतिरोधी इस किस्म के सिट्टों की लम्बाई 24 सेमि, मोटाई 3.7 सेमि तथा 1000– दानो का वजन 11.3 ग्राम होता है।

संकर : एच एच बी 311 (2018)
हिसार कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित अधिक लौह युक्त (73–83 पीपीएम) संकर बाजरा की किस्म के सिट्टे शंक्वाकार व मध्यम लंबे होते हैं। एचएचबी 311 किस्म 75–80 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। अच्छा रख रखाव करने पर 45.0 क्विंटल तक पैदावार देने की क्षमता रखती हैं तथा जोगिया रोगरोधी हैं।

संकर : एच एच बी 272 (2016)
हिसार कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित किस्म शीघ्र पकाव अवधि (74 दिन) में पककर 24 क्विंटल औसत उपज देती है। बालियाँ सुगठित व नश्तर आकृति की, दाने भूरे गोलाकार, परागकोष का रंग भूरे होते हैं। यह किस्म राजस्थान, गुजरात व हरियाणा के लिए संस्तुत है। झोंका प्रतिरोधी इस किस्म के सिट्टों की लम्बाई 20 से. मी., मोटाई 2.8 से. मी. तथा 1000 दानो का वजन 9.2 ग्राम होता है।

संकर : 86 एम् 13 (2016)
पायनियर ओवरसीज कॉर्पोरेशन हैदराबाद द्वारा विकसित किस्म देरी से पकने वाली (88 दिन) 54 क्विंटल औसत उपज देती है। यह किस्म राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, व तमिलनाडु के ग्रीष्म ऋतु में बाजरा उगने वाले क्षेत्रों के लिए संस्तुत है। बालियाँ सुगठित व तंतु आकार की, दाने अंडाकार भूरे रंग के होते हैं डाउनी मिल्ड्यू, प्रतिरोधी किस्म के सिट्टों की लम्बाई 22 से. मी., मोटाई 3.4 से.मी. तथा 1000 दानो का वजन 10.8 ग्राम होता है।

संकर : 86 एम् 82 (2016)
पायनियर ओवरसीज कॉर्पोरेशन हैदराबाद द्वारा विकसित किस्म देरी से पकने वाली (84 दिन) 38 क्विंटल औसत उपज देती है। यह किस्म

राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश के लिए संस्तुत है। बालियाँ लम्बी, सुगठित व नश्तर आकृति की, दाने भूरे गोलाकार, परागकोष का रंग बैंगनी होते हैं। डाउनी मिल्ड्यू, अरगट, रतुआ व कंडुआ प्रतिरोधी किस्म के सिट्टों की लम्बाई 29 से.मी., मोटाई 3.1 से.मी. तथा 1000 दानो का वजन 10.2 ग्राम होता है।

संकर : के बी एच 108 (2014)

कृष्णा सीड प्राइवेट लिमिटेड , आगरा द्वारा विकसित किस्म देरी से पकने वाली (86 दिन) 37 क्विंटल औसत उपज देती है। यह किस्म राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश के लिए संस्तुत है। बालियाँ सुगठित व बेलनाकार आकृति की, दाने भूरे गोलाकार, परागकोष का रंग बैंगनी होते हैं। डाउनी मिल्ड्यू, रतुआ व् कंडुआ प्रतिरोधी किस्म के सिट्टों की लम्बाई 24 से.मी., मोटाई 3.4 से. मी.तथा 1000 दानो का वजन 10.2 ग्राम होता है।

संकर : एम् पी एम् एच 17 (2013)

अखिल भारतीय बाजरा अनुसन्धान परियोजना, जोधपुर द्वारा विकसित यह किस्म मध्यम पकाव अवधि (79 दिन) में पककर 28 क्विंटल औसत उपज देती है। यह किस्म राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश के लिए संस्तुत है। बालियाँ सुगठित, नश्तर आकृति की व बालयुक्त, दाने भूरे रंग के होते हैं, परागकोष का रंग पीला होता है। डाउनी मिल्ड्यू प्रतिरोधी किस्म के सिट्टों की लम्बाई 23 से.मी., मोटाई 2.6 से.मी.तथा 1000 दानो का वजन 8.0 ग्राम होता है।

संकर : आर एच बी 173 (2011)

स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय बीकानेर द्वारा विकसित राजस्थान राज्य के लिए संस्तुत किस्म 79 दिन में पककर 30 क्विंटल औसत उपज देती है। यह किस्म राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश के लिए संस्तुत है। बालियाँ सुगठित व बेलनाकार आकृति की होते हैं। यह किस्म डाउनी मिल्ड्यू प्रतिरोधी है।

संकर : एच एच बी 67 संशोधित (2005)

हिसार कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित किस्म अतिशीघ्र पकाव अवधि (70 दिन) में पककर 20 क्विंटल औसत उपज देती है। यह किस्म राजस्थान, गुजरात व हरियाणा के शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। यह किस्म मृदा आर्द्रता तनाव के लिए उच्च प्रतिरोधी है। डाउनी मिल्ड्यू के लिए प्रतिरोधी यह किस्म है। यह मार्कर असिस्टेड सलेक्शन द्वारा विकसित देश की प्रथम व्यावसायिक किस्म है ।

प्रोएग्रो 9444 (2004)

प्रोएग्रो, हैदराबाद द्वारा विकसित किस्म राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र , तमिलनाडु के ग्रीष्म कालीन बुवाई वाले क्षेत्रों तथा राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, उत्तरप्रदेश व मध्य प्रदेश के खरीफ बाजरा क्षेत्रों के लिए संस्तुत है। लम्बी बढ़ने वाली किस्म की पर्णसंधि हरी रोंयेदार, बालियाँ सुगठित मोमबत्ती आकृति की, दाने भूरे गोलाकार होते हैं, परागकोष का रंग पीला होता है। डाउनी मिल्ड्यू के लिए प्रतिरोधी यह किस्म रतुआ की लिए सहिष्णु है। 85 दिन में पककर 35 से 40 क्विंटल औसत उपज प्राप्त होती है।

संकर : एच एच बी 67 (1990)

हिसार कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित यह किस्म अतिशीघ्र पकाव अवधि वाली मध्यम ऊंचाई की, सूखा से बचाव वाली, लवण सहनशील, अंतरा शष्य व बहु फसल पद्धति के लिए उपयुक्त किस्म है। इसका तना पतला, मध्यम संकरी पत्तियां, अर्ध सुगठित तंतु आकृति की बालियाँ, पीले रंग के परागकोष, दाने भूरे गोलाकार होते हैं। 62 दिन में पककर 31 क्विंटल औसत उपज देती है।

वैरायटी : मंडोर बाजरा कम्पोजिट 2 (एम् बी सी 2) (2011)

कृषि अनुसन्धान केंद्र मंडोर, जोधपुर द्वारा विकसित कम्पोजिट वैरायटी राजस्थान, हरियाणा, गुजरात के लिए उपयुक्त किस्म शीघ्र पकने वाली, मध्यम ऊंचाई की मध्यम लम्बाई के अर्ध सुगठित बेलनाकार बालियाँ, भूरे गोलाकार दाने वाली किस्म 77 दिन में पककर 15 क्विंटल औसत उपज देती है।

वैरायटी : धनशक्ति (आई सी टी पी Fe 10–2) (2014)

धुले विश्वविद्यालय द्वारा द्वारा विकसित शीघ्र पकने वाली (76 दिन) किस्म 22 क्विंटल औसत उपज देती है। यह किस्म राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश के लिए संस्तुत है। बालियाँ बेलनाकार नश्तर आकृति की, दाने चमकदार मोटे गोलाकार, स्लेटी भूरे, रंग के होते हैं। आयरन (76–91 पी पी एम) व जिंक (39–48 पी पी एम) की मात्रा अधिक होती है। डाउनी मिल्ड्यू प्रतिरोधी किस्म के सिट्टों की लम्बाई 21 सेमि, मोटाई 3.5 सेमि तथा 1000– दानो का वजन 13–17 ग्राम होता है।

❋❋❋

बाजरे के प्रमुख रोग एवं उनका प्रबंधन

हनुमान सिंह
कृषि महाविद्यालय, हिण्डोली–बून्दी, राजस्थान

भारत का बाजरे के क्षेत्रफल एवं उत्पादन दोनों में विश्व में प्रथाम स्थान हैं। भारत देश में बाजरे की खेती लगभग 9.5 मिलियन हैक्टर क्षेत्रफल में की जाती हैं। इसका कुल उत्पादन 9.8 मिलियन टन तक होता है। भारत देश में इसका क्षेत्रफल विश्व के बाजरा उगाने वाले देशों में लगभग 42 प्रतिशत है। राजस्थान में इसके देश के कुल क्षेत्रफल का लगभग 46–49 प्रतिशत तक उगाया जाता हैं। राजस्थान में इसका क्षेत्रफल 5.51 मिलियन हैक्टर है। इसकी पैदावार लगभग 6.11 मिलियन टन है और औसत उपज 1843 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर है। देश में बाजरे की औसत पैदावार 1030 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर हैं।

देश में बाजरा मुख्यतः राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, हरियाणा एवं कर्नाटक आदि राज्यों में उगाया जात है। सामान्यतः बाजरा खरीफ ऋतु की फसल है, इसे ग्रीष्म ऋतु में भी उगाया जा सकता हैं। इसकी गिनती मोटे अनाजों में की जाती हैं। इसका उपयोग दाने एवं चारे दोनो के रूप में किया जाता हैं। इस फसल की जल मांग कम होने के कारण यह राजस्थान, गुजरात व हरियाणा आदि राज्यों में इसकी खेती की जाती है। इन राज्यों में वर्षा कम मात्रा में होती हैं। कुछ समय से बाजरे में लगने वाले रोगों की वजह से इसकी उत्पादकता दिन–प्रतिदिन घटती जा रही हैं। बाजरे में लगने वाले रोगों की वजह से दाने की गुणवत्ता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ा हैं।

बाजरा में रोग प्रबंधन को अपनाकर इसमें लगने वाले विभिन्न रोगों जैसे की हरित बाली रोग, अर्गट रोग, कण्डुआ इत्यादि से निदान पाया जा सकता हैं। ये रोग बाजरे का उत्पादन को कम करने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

बाजरे की फसल में लगने वाले मुख्य रोग

- हरित बाली रोग/जोगिया रोग/मृदुरोमिल आसिता रोग/डाउनी मिल्डयू
- अर्गट रोग/चेंपा रोग
- कण्डुआ रोग/स्मट रोग/कण्ड रोग

हरित बाली रोग

रोगजनक : यह रोग बाजरे में स्केलेरोस्फोरा ग्रामीनीकोला नामक फफूंद से होता हैं।

लक्षण : यह रोगजनक, बीज व मृदा दोनों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर फैलता हैं।

मृदुरोमिल आसिता अवस्था

इस अवस्था में रोग से ग्रसित पौधे की पत्तियां पीली पड़ जाती हैं। रोग से ग्रसित पौधे की पहली व तीसरी पत्ती पर अंकुर अवस्था में अधिक प्रभाव पड़ता है। पत्तियों के निचले हिस्सों में व्हाइट डाउनी ग्रोथ दिखाई देती है।

हरित बाली अवस्था

इसमें रोग ग्रसित पौधे की वृद्धि रूक जाती हैं। पौधे का फूलों वाला भाग हरी पत्तियों जैसी संरचना में परिवर्तित हो जाता हैं। पत्तियां टेढ़ी–मेढ़ी होकर बालियों जैसी दिखाई देती हैं इसलिए इस रोग को हरित बाली रोग भी कहते हैं।

हरित बाली रोग से ग्रसित पौधे

प्रबंधन

- फसल उगाने के लिए सदैव प्रमाणित बीज का उपयोग करना चाहिए।
- रोग से प्रभावित पौधों को उखाड़कर तुरंत नष्ट कर देना चाहिए।
- मई के अन्तिम सप्ताह या जून के प्रारम्भिक सप्ताह, जिस समय वातावरण का तापमान अधिक हो या तेज धूप में मृदा पलटने वाले हल से 15 से.मी. गहरी जुताई करने के बाद देसी हल से दो–तीन जुताइयां करके पाटा लगाकर भूमि को समतल कर लेना चाहिए। ऐसा करने से मृदा में पड़े निष्क्रिय बीजाणु नष्ट हो जाते हैं।
- रोग प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग करना चाहिए।
- ट्राइकोडर्मा हर्जियानम और ट्राइकोडर्मा लिग्नोरम का उपयोग करके रोग के प्रभाव को कम किया जा सकता हैं।
- स्यूडोमोनास फ्लोरोसेंस का बीज एवं पर्णीय छिड़काव करके इस रोग का प्रभाव कम किया जा सकता है।

- फसल की बुआई के एक महीने के भीतर मैंकोजेब 0.25 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।

अर्गट रोग/चेंपा रोग

रोगजनक : यह रोग बाजरे में कलेवीसेप्स फुजीफॉर्मीस नामक फफूंद से होता हैं।

लक्षण : इस रोग से ग्रसित दाने स्कलेरोसिया में रूपांतरित हो जाते हैं। स्कलेरोसिया छोटा एवं गहरे भूरे रंग के होते है, और यह बाजरे की बालियों में बनते हैं। इस रोग से प्रभावित छोटी बालियां (स्पाइक्लेट्स) गुलाबी या हल्के भूरे रंग से शहद के रंग जैसी हो जाती हैं। इससे मीठा चिपचिपा तरल पदार्थ निकलता है, जिसे मधुरस कहा जाता हैं। इस रोग का प्रकोप पौधे के दुधिया अवस्था में वर्षा होने पर अधिक हो जाता हैं।

अर्गट रोग से प्रभावित पौधे

प्रबंधन

- ग्रीष्म ऋतु में खेत में गहरी जुताई करें।
- बाजरे के खेत से खरपतवार जैसे अंजन ग्रास एवं कुटकी (पेनिक्टम एंटीडोटल) को हटाकर बीजाणु को अधिक फैलने से रोका जा सकता है।
- स्क्लेरोसिया को बीज से अलग करने के लिए बीजों को 10 प्रतिशत ब्राइन सॉल्यूशन में डुबोना चाहिए। ऐसा करने से स्क्लेरोसिया, बीज से अलग होकर तैरते हुए ऊपर की सतह पर आ जाता है, जिसे आसानी से बाहर निकाल लेते हैं। स्क्लेरोसिया की मात्रा के अनुसार ब्राइन सॉल्यूशन की मात्रा बढ़ाई व घटाई जा सकती हैं।
- फसलचक्र में बाजरे के साथ अंतर फसल के रूप में दलहनी फसलें जैसे– ग्वार, मूंग, मोठ आदि की बुआई करनी चाहिए। ऐसा करने से अर्गट रोग की प्रभाविता कम हो जाती हैं।
- फसल उगाने के लिए हमेशा रोग प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग करना चाहिए।
- बीज को ट्राइकोडर्मा विरिडी 6 ग्राम प्रति कि.ग्रा. से उपचारित करना चाहिए।
- स्क्लेरोसिया परजीवी कवक जैसे फ्यूजेरियम का उपयोग रोग नियंत्रण के लिए करना चाहिए।
- फफूंदनाशी कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 0.2 प्रतिशत का बालियों के तुरन्त निकलने से पहले छिड़काव करना चाहिए।
- इस रोग की अधिक प्रभाविता से बचने के लिए बाजरे की जल्दी बुआई करनी चाहिए।

कण्डुआ रोग/स्मट रोग

रोगजनक : यह रोग बाजरे में टोलीपोस्पोरियम पेनीसिलेरी नामक फफूंद से होता हैं।

लक्षण : यह एक बीजोड़ रोग का लक्षण सबसे पहले पौधे के ईयर हेड पर दिखाई देता हैं। इस रोग से ग्रसित अण्डाश्य सौराई में रूपान्तरित हो जाता है और कोयले के जैसे काले रंग का दिखाई देता हैं। इस रोग से ग्रसित दाने अण्डाकार एवं बल्बाकार हो जाते हैं। प्रारंभिक अवस्था में सौराई हरे रंग की होती हैं और बाद में धीरे–धीरे भूरी होकर अंत में यह काले रंग की हो जाती हैं।

प्रबंधन

- स्वस्थ बीज का स्वस्थ मृदा में फसल उगाने के लिए उपयोग करें।
- कण्ड रोग से प्रभावित पौधे को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
- इस रोग से बचने के लिए लम्बे समय तक फसल चक्र को अपनाना चाहिए।
- रोग प्रतिरोधी किस्मों का फसल उगाने के लिए उपयोग करना चाहिए।
- बीज को ट्राइकोडर्मा स्पी. 10 ग्राम प्रति कि.ग्रा. से उपचारित करना चाहिए।
- वीटावैक्स 0.25 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।
- मई–जून मे जब तेज धूप हो तो मृदा का सौरीकरण करें।

कण्डुआ रोग से लक्षण

कांगणी (*सिटेरिया इटेलिका*) की उन्नत खेती

पारूल गुप्ता, अभय दशोरा एवं हिमांसुमन
राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपुर, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

राजस्थान में छोटे खाद्यान्न की फसलों का क्षेत्रफल लगभग 35 से 45 हजार हेक्टर है। इन खाद्यान्नों की प्रमुख फसलें कांगणी, चीना, रागी, कोदो, सांवा व कुकी है। कांगणी दुनिया में सबसे पुराना बाजरा है, एशिया, अफ्रीका और अमेरिका के लगभग 23 देशों में इसकी खेती की जाती है। सभी छोटे खाद्यान्नों में उत्पादन की दृष्टि से कांगणी दुनिया में दूसरे स्थान पर है। भारत में, यह मुख्य रूप से आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तेलंगाना, राजस्थान, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में कुछ हद तक उगाया जाता है। कांगणी दक्षिण राजस्थान के गरीब व आदिवासी बाहुल्य शुष्क क्षेत्रों की फसल है इसे कान / काकुन आदि नाम से भी जाना जाता है। यह कम उपजाऊ, असिंचित भूमि तथा अरावली पर्वतमाला की ढलाऊ जमीन पर सफलतापूर्वक क्रमशः दाने व चारे के लिये उगाई जाती है। यह फसल शीघ्र पकने वाली व सूखा सहन करने की क्षमता रखती है। इस पर कीट एवं रोगों का आक्रमण नहीं के बराबर होता है तथा लम्बी अवधि का भण्डारण करने पर भी कीट नहीं लगते है। जहा तक कांगणी की पौष्टिकता की बात करे तो इसमें अनेको गुण पाए जाते है जो कौणी को अन्य बाजरा से पृथक करते है। कांगणी बीटा कैरोटीन का प्रमुख स्रोत माना जाता है। इसके अलावा इसमें एल्कलॉइड, फेनोलिक्स, फलवोनॉइड्स, टॉनिन्स और विटामिन बी1,बी2,बी3 ,पोटेशियम क्लोरीन और जिंक मौजूद होता है और साथ में कई प्रकार के एमिनो एसिड भी उपलब्ध होते है। कांगणी के महत्व को मधुमेह भोजन के रूप में पहचाना जाता है। यह आहार फाइबर, खनिजों, सूक्ष्म पोषक तत्वों, प्रोटीन, में समृद्ध है। चावल के विपरीत, कांगणी शरीर का चयापचय प्रभावित किए बिना लगातार ग्लूकोज जारी करता है। साधारणतः इसके दानों को पीसकर आटे से चपातियों बनाई जाती है तथा दानों को उबालकर चावल की तरह खाया जाता है। कांगणी उत्पादन बढ़ाने के लिये उन्नत किस्में तथा शस्य क्रियाएँ इस प्रकार हैं।

उन्नत किस्में एवं उनकी विशेषताएँ

अर्जुन: राष्ट्रीय अनुमोदित यह किस्म 80–85 दिन में पककर 12–14 क्विंटल प्रति हैक्टर उपज देती है। इसके पौधे 90 से 95 सें. मी. लम्बे होते हैं व लगभग 40 से 45 क्विंटल प्रति हैक्टर सूखे चारे की पैदावार देते हैं। इसका सिट्टा 13 से 15 सें. मी. लम्बा होता है।

एस.आई.ए.–326: यह भी राष्ट्रीय अनुमोदित किस्म है। यह 75 से 80 दिन में पककर 11–13 क्विटल प्रति हैक्टर की उपज देती है। इसके पौधे 85 से 90 सें.मी. लम्बे होते है व लगभग 30–41 क्विंटल सूखे चारे की पैदावार होती है। इसका सिट्टा 11–13 सें.मी. लम्बा होता है।

गवरी (एस.आर.–11): राजस्थान के लिये अनुमोदित यह किस्म दाने व चारे के लिये उपयुक्त पायी गई है। यह किस्म 75 से 80 दिन में पककर 15 से 16 क्विंटल प्रति हैक्टर की पैदावार देती है। इसके पौधों की लम्बाई तुलनात्मक रूप से अधिक (125 सें.मी.) है तथा इसके सूखे चारे की उपज 45–50 क्विंटल प्रति हैक्टर है। इसके सिट्टे 16 से 20 सें. मी. लम्बे होते हैं।

मीरा (एस.आर.–16): राजस्थान के समस्त छोटे/लघु खाद्यान्न उगाये जाने वाले क्षेत्रों के लिये यह किस्म एक मध्यम ऊँचाई (105 सें.मी.) की द्विउपयोगी दाने एवं चारे के लिये उन्नत प्रजाति है। इसके दानों की पैदावार 15–17 क्विंटल प्रति हैक्टर एवं सूखे चारे की उपज 46–50 क्विंटल प्रति हैक्टर है। इसकी घनी पुष्प गुच्छावली (सिट्टे) जामुनी–बैंगनी रंग लिए होती है। पत्तियाँ चौड़ी, उच्च एवं चमकदार होती है। यह किस्म 75–80 दिन में पक जाती है। और मृदुरोमिल आसिता रोगरोधी है।

प्रताप काँगणी (एस. आर. 51): यह लम्बी (110–130 से.मी.) द्विउपयोगी चौड़े पत्तों वाली जल्दी पकने वाली (62–68 दिन) किस्म है। अर्द्ध–घने सुनहरी संकुर लगे सिट्टे 18–25 सें.मी. लम्बे, उपज 16–18 क्विंटल दाना व 46–50 क्विटल सूखा चारा प्रति हैक्टर है। यह किस्म रोग व कीटों के लिए प्रतिरोधी तथा सूखा सहनशील है। दानें बड़े व क्रीम रंग के होते हैं।

उपरोक्त किस्मों के अतिरिक्त देश के विभिन्न राज्यों द्वारा कई बहुप्रचिलित किस्में अधिसूचित हुई हैं जिनका उल्लेख निम्नलिखित है।

राज्य	राज्य में लोकप्रिय किस्में
आंध्र प्रदेश	सीआईए 3088, सीआईए 3156, सीआईए 3085, लेपक्षी, सीआईए 326
बिहार	आरएयू1, सीआईए 3088, सीआईए 3156, सीआईए 3085
कर्नाटक	डीएचएफटी–109–3, एचएमटी 100–1, सीआईए 3088, सीआईए 3156, सीआईए 3085, पीएस 4
तमिलनाड	टीएनएयू 43, टीएनएयू–186, सीओ (टीई) 7, सीओ 1, सीओ 2, सीओ 4, सीओ 5,के 2, के 3
तेलंगाना	एसआईए 3088, सीआईए 3156, सीआईए 3085, लेपक्षी, सीआईए 326
उत्तराखंड	पीएस 4, पीआरके 1, श्रीलक्ष्मी, एसआईए 326, सीआईए 3156, सीआईए 3085
उत्तर प्रदेश	पीआरके1, पीएस 4 श्रीलक्ष्मी, नरसिम्हाराया, एस–114,एसआईए 326

खेत की तैयारी: भूमि को एकार मिट्टी पलटने वाले हल से तथा 2 से 3 बार देशी हल या हैरों से जोत लेना चाहिये। जुताई के पश्चात् उस पर पाटा चला दें जिससे भूमि भुरभुरी तथा समतल हो जायें।

बीजोपचार: हल्के बीजों को निकालने के लिए 2 प्रतिशत नमक के घोल में डालकर अच्छी तरह बीजों को हिलायें। घोल को ऊपर तैरते हल्के बीजों को निकाल दें और पैंदे में बैठे बीजों को साफ पानी से धोकर सुखा लें। कवक जनित रोगों के लिए 3 ग्राम कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू.पी. से प्रति कि.ग्रा. बीज को उपचारित करें।

बुवाई:

- **बुवाई का समय:** इन फसलों की बुवाई जून के अन्तिम सप्ताह से मध्य जुलाई तक जब भी खेत में पर्याप्त नमी हो की जा सकती है।
- **बीज की मात्रा:** 8 से 10 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर।
- **बुवाई विधि:** साधारणत बीज को छिटक कर या बिखेरकर बोया जाता है परन्तु अधिक उपज के लिये इन फसलों को 25 सें.मी. दूरी पर कतारों में बोना चाहिये। बीज को लगभग 3 सें.मी. गहराई पर बोए।

खाद व उर्वरक: फसल के पौधों की उचित बढ़वार के पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। अतः भूमि को तैयार करते समय कांगणी की फसल के लिए 5 टन अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट का प्रयोग करना चाहिए। इसके पश्चात बाजरे की वर्षा पर आधारित फसल में 40 कि.ग्रा. नत्रजन और 20 कि.ग्रा. फास्फोरस (कमी होने पर) प्रति हैक्टर की आवश्यकता होती है। नत्रजन की आधी मात्रा बुवाई के समय तथा बची हुई मात्रा को निराई–गुड़ाई के बाद देवें। ध्यान रहे उर्वरकों का उपयोग मिट्टी की जांच के आधार पर ही करना चाहिए।

सिंचाई व जल निकास

छोटे खाद्यान्न की फसल वर्षा के समय बोई जाती है। अतः पानी सम्बन्धी आवश्यकता वर्षा से ही पूरी हो जाती है। अच्छी पैदावार के लिये खेत में जल–निकास का समुचित प्रबन्ध होना चाहिये। अतः समतल खेतों में 40–45 मीटर की दूरी पर गहरी नालियाँ बना लेनी चाहिये जिससे वर्षा का अतिरिक्त जल नालियों द्वारा खेत से बाहर निकल जाये।

निराई एवं गुड़ाई: निराई एवं गुड़ाई अधिक अनाज की उपज के लिए फसलों में बुवाई के 30–40 दिन बाद कम से कम एक निराई–गुड़ाई तथा छंटाई अवश्य करें।

हानिकारक कीट एवं रोग और उनके रोकथाम: दीमकः दीमक कांगणी के पौधे की जड़ खाकर नुकसान पहुँचाती है। इसकी रोकथाम के लिए खेत तैयार करते समय क्यूनालफॉस या क्लोरपायरीफॉस 1.5 प्रतिशत पाउडर 25–30 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से मृदा में मिला देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त बीज को क्लोरपायरीफास 4 मि.ली./ कि.ग्रा. बीज दर से बीजोपचार करना चाहिए।

सफेद लट: कांगणी में सफेद लट के नियंत्रण के लिए एक कि.ग्रा. बीज में 3 कि.ग्रा. कारबोफ्यूरॉन 3 प्रतिशत या क्यूनॉलफास 5 प्रतिशत कण 15 कि.ग्रा. डीएपी मिलाकर बुवाई करें।

अरगट : इसकी रोकथाम के लिए बीजों को थाइरम 75 प्रतिशत डब्लूएस 2.5 ग्राम और कार्बेण्डाजिम 50 प्रतिशत डब्लूपीकी 2.0 ग्राम प्रति किग्रा बीज दर से उपचारित करके बोना चाहिए। रोग के लक्षण दिखने पर कार्बेन्डाजिम् मैंकोजेब 40 ग्रा. /15 लीटर पानी के साथ मिलकर छिड़काव करना चाहिए।

स्मटः इस रोग की रोकथाम के लिए बीजों को थाइरम 75 प्रतिशत डब्लूएस 2.5 ग्राम और कार्बेण्डाजिम 50 प्रतिशत डब्लूपीकी 2.0 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिए। तथा रोग के लक्षण दिखने पर मेटलैक्सिल मैंकोजेब के मिश्रित रसायन को 40 ग्राम /15 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

कटाई: कटाई वाली प्रजातियों में, बुवाई के 69–75 दिन बाद (50 प्रतिशत पूर्ण अवस्था) के बाद कटाई करें। बहु–कटाई वाली प्रजातियों में पहली कटाई 40–45 दिन और फिर 30 दिनों के अंतराल पर कटाई करते हैं।

रागी की उन्नत खेती से पौषण एवं वित्तिय सुरक्षा

हरफूल मीणा, सुश्री मनोज, शंकर लाल यादव एवं राकेश कुमार बैरवा
कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, कोटा, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर, जयपुर एवं कृषि विज्ञान केन्द्र, बोरखेडा, कोटा

रागी की खेती को भारत में करीब 4000 साल पहले लाया गया था जब से भारत में इसकी खेत हो रही हैं। रागी का वानस्पतिक नाम (*Eleusine coracana*) हैं। रागी का मोटे अनाजों की खेती में विशेष स्थान हैं, इसको फिंगर मिलेट एवं लाल बाजरा आदि नामों से भी जाना जाता हैं। अफ्रीका एवं एशिया महाद्वीप में रागी की खेती मुख्य फसल के रूप में की जाती हैं। रागी मूल रूप से इथियोपिया के उच्च इलाकों का पौधा है। यह अफ्रीका और एशिया के सूखे क्षेत्रों में उगाया जाता है। यदि हम भारत की बात करें तो रागी भारत में सर्वाधिक उत्पादन की जाने वाली फसल है इस लिए भारत रागी का सबसे बड़ा निर्यात करने वाला देश भी है। भारत के कर्नाटक राज्य में रागी का सबसे अधिक उत्पादन किया जाता है अतः कर्नाटक राज्य भारत का सबसे बड़ा रागी उत्पादक राज्य है। इसके पौधे करीब एक से डेढ़ मीटर तक की ऊंचाई के होते हैं। रागी के दाने गोलाकार एंव छोटा व भूरे रंग के झुर्रीदार होते हैं। इसकी खेती तमिलनाडु, कर्नाटक, ओड़िशा, उत्तराखंड, महाराष्ट्र, झारखंड, आंध्रप्रदेश, बिहार राज्यों में की जाती है।

प्राचीन काल से ही देश में पारम्परिक मोटे अनाज जैसे ज्वार, जौं, मक्का आदि का सेवन किया जाता रहा है। इन्हीं मोटे अनाजों में से एक है रागी । यह अनाज सेहत के लिए बहुत ही लाभकारी हैं। इसको सुपरफूड की संज्ञा दी गई है। रागी में प्रोटीन, फाइबर, आयरन, कार्बोहाइड्रेट, मिनरल्स अन्य पोषक तत्वों का भंडार होता है, इसका अनाज ग्लूटेन फ्री होता जो कई प्रकार की गंभीर बीमारियों से बचाता है। रागी का स्वाद बेहद स्वादिष्ट होता है एवं यह ऊर्जा का महत्पूर्ण घटक भी हैं। यदि इस अनाज को अपने रोज के आहार में शामिल कर लिया जाये तो निश्चित रूप से स्वास्थ सम्बंधित कई समस्याओं में लाभ मिलेगा। अनाज को कई दिनों तक भण्डारण करके रखते हैं तब अधिक समय तक सुरक्षित रखने व कीटो से बचाने के लिए कीटनाशक दवाइयों का उपयोग करना पड़ता है। रागी एक ऐसा अनाज है जिसको संग्रह करने के लिए कीटनाशक दवाइयों का उपयोग नहीं करना पड़ता है। मोटे अनाज वे अनाज हैं जिन्हे लगाने में ज्यादा मशक्त नहीं करनी पड़ती है। इन्हे आसानी से लगाया जा सकता है। रागी कि सबसे बड़ी विशेषता इसको ऊँची पहाड़ियों पर आसानी से लगाया जा सकता हैं। रागी के पौधे को शुष्क मौसम में उगाया जा सकता है।

जलवायु : इसको शुष्क मौसम में उगाया जाता है इसमें सूखे को सहन करने की क्षमता के साथ सामान्य जल भराव को बर्दाश्त करने की क्षमता होती है। रागी की खेती 50 से 90 सें.मी. वर्षा उपयुक्त होती है व इसको उचाई वाले क्षेत्रों पर उगाया जाता है।

उपयुक्त मिट्टी : रागी सभी प्रकार की भूमि में हो जाती है परन्तु कार्बनिक पदार्थो से भरपूर बलुई दोमट मिट्टी को बढ़िया माना गया है। उचित जल निकासी वाली काली मिट्टी में जिसका का पीएच मान 5.5 से 8 के मध्य हो उपयुक्त रहती हैं।

खेत की तैयारी : रागी की फसल के लिए पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से कर खेत को कुछ दिन के लिए खुला छोड़ दें ताकि उसमें मौजूद पुराने फसल अवशेष, खरपतवार व कीट नष्ट हो जाये। इसके पश्चात आवश्यकतानुसार गोबर की खाद डालकर खेत की जुताई कर पलेवा करें एवं खेत की ऊपरी सतह सूख जाने के बाद फिर से 2–3 बार आडी–तिरछी गहरी जुताई कर करे। आखिर में रोटावेटर चलाकर मिट्टी को भुरभुरी बनाकर खेत को बिजाई के लिए समतल कर लें।

रागी की उन्नत किस्में : रागी की उन्नत किस्म जो कम समय में अधिक पैदावार देती है। जे एन आर 852, जी पी यू 45, चिलिका , जे एन आर 1008, पी इ एस 400, वी एल 149, आर एच 374 आदि है।

बीज दर एवं उपचार : बीज की मात्रा बुवाई की विधि पर निर्भर करती है। बीज की बुवाई सीड ड्रिल विधि से करने पर बीज की मात्रा 5 किलो प्रति हेक्टेयर व छिडकाव विधि से बोने के लिए 10–12 किलो बीज प्रति हेक्टेयर की दर से लगता है। बीज को उपचारित करने के लिए थीरम, बाविस्टीन या कैप्टन दवा उपयोग करें।

बुवाई का समय : रागी की बुवाई मई के अन्तिम सप्ताह से जून अन्त तक कर सकते है। इसको जायद के मौसम में भी उगाया जा सकता है। बीज की बुवाई छिड़काव एवं ड्रिल दोनों तरीकों से की जा सकती है। छिड़काव विधि से बीज की बुवाई के बाद बीज को मिट्टी में मिलाने के लिए कल्टीवेटर से दो बार हल्की जुताई कर पाटा लगा दें। रागी की बिजाई मशीनों द्वारा कतारों में करते समय कतार से कतार की दूरी एक फीट होनी चाहिए व बीज से बीज की दूरी 15 सें मी होनी चाहिए।

फसल की सिंचाई: इसकी फसल के लिए अधिक सिचाई की आवश्यकता नहीं होती है। यदि वर्षा सही समय पर नहीं होती हैं तो बुवाई के एक महीने के बाद फसल की सिचाई करें। फसल पर फूल एवं दाने आने पर पर्याप्त नमी की आवश्यकता होती है। सामान्यतः 10 से 15 दिन के अंतराल पर फसल की सिचांई करें।

खाद एवं उर्वरक : रागी की फसल के लिए 40–45 कि.ग्रा. नाइट्रोजन,

30–40 कि.ग्रा., फॉस्फोरस एवं 20–30 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से डाले। सभी उर्वरको का मिश्रण बनाकर बुवाई के समय खेत में डालें व अच्छी पैदावार लेने के लिए बुवाई से पूर्व गोबर की खाद अवश्य डालें।

खरपतवार नियंत्रण : रागी की फसल में खरपतवार नियंत्रण के लिए उचित समय पर निराई गुड़ाई करते रहे। रागी की बुवाई के करीब 20–25 दिन बाद पहली निराई करें। खरपतवार नियंत्रण के लिए रागी की बुवाई से पहले आइसोप्रोट्यूरॉन या ऑक्सीफ्लोरफेन 1.0 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

फसल की कटाई : रागी की कटाई उसकी किस्मों पर निर्भर करती है। सामान्यतः फसल 115–120 दिन में कटाई के लिए तैयार हो जाती है रागी की बालियों को दराती से काट कर ढेर बनाकर धुप में 3–4 दिनों के लिए सुखाएं व अच्छी तरह से सूखने के बाद थ्रेशिंग करें।

पैदावार : रागी की फसल से औसतन पैदावार 25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक हो जाती है।

रागी में पाए जाने वाले पोषक तत्व : रागी में फाइबर –19.1 एम जी, कुल फिनोल –102 एम जी, कार्बोहाइड्रेट –72.6 ग्राम, कैल्शियम – 344 एम जी, फास्फोरस – 283 एम जी, आयरन – 3.8 एम जी, मैग्नीशियम – 137 एम जी, सोडियम – 11 एम जी, पोटेशियम – 408 एम जी, कश्वपर – 0.47 एम जी, मैग्नीज – 5.49 एम जी, जिंक – 2.3 एम जी, राइबोफ्लेविन – 0.19 एम जी, नियासिन – 1.1 एम जी आदि पोषक तत्व पाए जाते है। इसके अलावा रागी में आयोडीन, कैरोटीन, ईथर के अर्क, मेथोनाइन अमीनो अम्ल, सोडियम, मैग्नीशियम, विटामिन B1, विटामिन B2, विटामिन B3 आदि पोषक तत्व भी उचित मात्रा में पाए जाते हैं।

रागी खाने के फायदे : रागी में पोषक तत्व भरपूर मात्रा में पाये जाते है जिसके सेवन से शरीर में खून, कोलेस्ट्रॉल, ब्लड शुगर लेवल एवं वजन कम करना आदि मे फायदेमंद ।

1 रागी एंटी ऑक्सीडेंट गुणों से भरपूर होती हैं। इसमें टैनिन, पॉलीफेनोल्स और फ्लेवनॉइड्स जैसे कई फेनॉलिक कंपाउंड मौजूद होते है जो एंटी ऑक्सीडेंट का काम करते है। इससे कई गंभीर बीमारियों से अपना बचाव कर सकते है।
2 रागी में डाइटरी फाइबर भरपूर मात्रा में पाया जाता है जिससे लंबे समय तक भूक नहीं लगती। वजन कम करने में सहायक जो भूक को नियंत्रित करता हैं।
3 इसमें एंटी–डायबिटिक गुण भी पाए जाते है जो ब्लड शुगर लेवल को नियंत्रित करने में मदद करता है ।
4 इसमें कैल्शियम के साथ कई जरूरी पोषक तत्व भरपूर मात्रा में पाये जाते हैं जो हड्डियों को स्वस्थ रखे में सहायक हो सकते है। रागी में अन्य खाद्य पदार्थों की तुलना में 30 % अधिक कैल्शियम पाया जाता है जो शिशु, बढ़ते बच्चों व गर्भवती महलाओं के लिए कैल्शियम का अच्छा स्रोत हैं।
5 घर पर फेस ब्लीच बनाने एवं त्वचा के लिए लाभकारी होती हैं इसमें मेथियोनीन, फेरुलिक एसिड एवं लाइसिन जैसे महत्वपूर्ण एमिनो एसिड मौजूद होते है जो हमारी त्वचा को झुर्रियों से बचाने का काम करते है।
6 रागी में एंटी–एजिंग गुण भी पाए जाते है अंकुरित रागी को खाने से एनीमिया से पीड़ित लोगों के अच्छा रहता हैं। क्योकि यहं हीमोग्लोबिन को बढ़ाने में सहायक होता हैं
7 रागी का सेवन हृदय को स्वस्थ रखने में सहायक होता हैं।
8 नियमित सेवन करने से कैंसर से वचाव किया जा सकता है रागी में मौजूद आयरन से एनीमिया में फायदेमंद शरीर में एनर्जी लेवल बढ़ाने के लिए रागी का सेवन करना चाहिए।

रागी के रागी खाने के नुकसान :

1. रागी में फाइबर भरपूर मात्रा में होता है जिसके अधिक सेवन से पेट संबंधी समस्याएं हो सकती है।
2. रागी कैल्शियम का एक प्रमुख स्रोत है जिसके अधिक सेवन से किडनी स्टोन का कारण बन सकता है।
3. रागी के अधिक सेवन से एलर्जी हो सकती है व थायरॉयड के रोगियों को रागी का सेवन नहीं करना चाहिए उनको परेशानी हो सकती है।

रागी का उपयोग : रागी के फायदे और नुकसान जानने के बाद रागी को कैसे खाना चाहिए। रागी की रोटियां बनाकर, लड्डू, पराठे, चकली, इडली, डोसा एवं ओट्स बनाकर खा सकते है।

❋❋❋

जायद उड़द की वैज्ञानिक खेती से अधिक लाभ कमाऐं

नरेश कुमार शर्मा, एस.एन. मीणा एवं धर्म सिंह मीणा
कार्यालय अतिरिक्त निदेशक कृषि (वि0) कोटा खण्ड, कोटा एवं कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, कोटा

उड़द भारत की वर्षभर उगाई जाने वाली एक प्रमुख दलहनी फसल हैं। पौधे से फली की तुड़ाई उपरान्त शेष भाग जानवरो के लिये चारे का एक प्रमुख पौष्टिक स्त्रोत है। साथ ही लेग्यूमिनोसी परिवार का सदस्य होने के कारण यह वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थरीकरण करता है जिससे भूमि की उर्वरता शक्ति में भी वृद्धि होती है। रबी की फसलों की कटाई सामान्यतया फरवरी से प्रारंभ होकर अप्रेल माह तक चलती रहती है। अतः इस दौरान खाली हुये खेतों में सिंचाई की उपलब्धता होने पर जायद उड़द की खेती आसानी से की जा सकती है। जायद में प्रकाश अधिक लम्बे समय तक लगभग 12 से 13 घण्टे तक उपलब्ध होने से अधिक मात्रा में भोजन का निर्माण होता है। साथ ही जायद में उड़द की फसल 60 से 70 दिन में पककर तैयार हो जाती है।

खेत की तैयारी : रबी फसल की कटाई के पश्चात् भूमि की दो बार जुताई कर खेत को अच्छे से तैयार करें। आवश्यकता हो तो सिंचाई भी की जा सकती है। जुताई के बाद खेत में पाटा लगायें जिससे मृदा नमी के ह्रास में कमी होती है।

उन्नत किस्में : पन्त यू 31, पन्त यू 19, पन्त यू 30, आजाद उड़द 2, कोटा उडद–3, मुकुन्दरा उडद–2, कोटा उडद–4, उतरा, WBU-108, के यू 300, के यू जी 479 आदि उड़द की राजस्थान में जायद में उगाने हेतु सर्वोत्तम किस्में है।

बीज दर : जायद उड़द में उचित पौध संख्या प्राप्त करने के लिये 15–20 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर बीज की आव यकता होती है।

बुवाई का समय : जायद उड़द की बुवाई मार्च के प्रथम पखवाड़े पर करने पर सर्वाधिक उपज प्राप्त होती है।

बीज उपचार : उड़द के बीजों को फफूंद जनित रोगो से बचाने के लिये 3 ग्राम थाइरम या बावस्टिन से उपचारित करें। कीटनाशी रसायन से बीजोपचार हेतु इमीडाक्लोरोपिड 5 एम. एल. प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित करें। लेग्यूमिनोसी परिवार का सदस्य होने के कारण राइजोबियम कल्चर से उपचारित करने से भी उड़द की फसल की उपज में 10 से 15 प्रतिशत वृद्धि होती है। 10 किलोग्राम उड़द के बीजों को राइजोबियम से उपचारित करने के लिये 250 ग्राम का पैकेट पर्याप्त है। इसके लिये 500 मिलीलीटर पानी में 50 ग्राम गुड़ घोलकर इसमें 1 पैकेट कल्चर मिला दिया जाता है, अब इसे 10 किग्रा बीज पर डालकर अच्छी तरह से मिला लें, जिससे सभी बीज पर कल्चर का लेप अच्छी तरह से चिपक जायें। उपचारित बीजो को 2 से 3 घण्टे छाया में सुखाकर तुरन्त बीजो की बुवाई करें। आजकल बाजार में तरल राइजोबियम कल्चर भी उपलब्ध है, जिससे 1 किलो बीजो को उपचारित करने के लिये 5 एम.एल. कल्चर की आवश्यकता होती है।

बुवाई की विधि : पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 सेन्टीमीटर तथा पौधे से पौध की दूरी 10 सेन्टीमीटर रखना अधिकतम उत्पादन हेतु लाभप्रद पाया गया है।

उर्वरक : उड़द फसल में 10 से 20 किग्रा नाइट्रोजन एवं 30 से 40 किग्रा फास्फोरस बुवाई से पूर्व सीड कम फर्टी ड्रील द्वारा ऊर कर देवें। उड़द में 250 किग्रा जिप्सम बुवाई से पूर्व प्रति हैक्टेयर की दर से भूमि में मिलाने से उपज में वृद्धि होती है। जस्ते की कमी वाले खेतो में अंतिम जुताई के समय 25 किग्रा जिंक सल्फेट या बुवाई के 30 एवं 45 दिन की अवस्था पर 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट का छिड़काव करें। नत्रजन : फास्फोरस : पोटाश (18 : 18 : 18) की 0.5 प्रतिशत मात्रा फूल शुरू होने की अवस्था पर पर्णीय छिड़काव करने से उपज में वृद्धि होती है।

खरपतवार नियंत्रण : उड़द फसल में अंकुरण से पूर्व खरपतवार नियंत्रण हेतु पेन्डीमिथेलीन 30 ई.सी. प्रति 1 किलो सक्रिय तत्व या पेन्डीमिथेलीन 30 ई.सी. + ईमाजिथापायर 2 ई.सी. (मिश्रण उत्पाद) प्रति 0.75 किलो सक्रिय तत्व प्रति हैक्टेयर का छिड़काव करें। खड़ी फसल में खरपतवारों के प्रभावी नियंत्रण हेतु सोडियम एसीफ्लोरफेन 16.5 प्रतिशत + क्लोडिनाफॉप प्रोपारजिल 8 प्रतिशत ई.सी. (मिश्रित उत्पाद) का 187.5 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हैक्टेयर या ईमाजिथापायर 10 प्रतिशत एस.एल. 55 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हैक्टेयर को बुवाई के 15 से 20 दिन बाद छिड़काव करें।

सिंचाई : जायद उड़द में कुल 3 से 4 सिंचाईयों की आवश्यकता होती है। प्रथम सिंचाई बुवाई के 20 से 25 दिन बाद करनी चाहिए। जल्दी बुवाई कर देने पर फसल के जमाव व राइजोबियम गांठों की संख्या पर प्रतिकूल असर पड़ता है। शेष सिंचाई 12 से 15 दिन के अंतराल पर करते रहना चाहिए। फूल आने से पहले तथा फलियों में दाना बनते समय सिंचाई अवश्य की जानी चाहिए अन्यथा उपज में सर्वाधिक कमी आती है।

कीट प्रबंधन : मोयला, हरा तेला व मक्खी के नियंत्रण हेतु मिलाथियान 50 ई.सी. या डायमिथोयट 30 ई.सी. 1 लीटर या मिलाथियोन 5 प्रतिशत चूर्ण का 25 किलो ग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से प्रयोग करें। फली छेदक का प्रकोप होने पर मोनोक्रोटोफोस 36 एस.एल. 1 लीटर पानी में मिलाकर प्रयोग करें।

रोग प्रबंधन :

1. **पीतशिरा मोजेक विषाणु रोग :** यह एक विषाणु जनित रोग है जिसके शुरूआती लक्षण नई पत्तियों पर छोटे पीले धब्बों के रूप में दिखाई देते है। सफेद मक्खी इस विषाणु के रोगवाहक का कार्य करता है। इस रोग के प्रभावी नियंत्रण हेतु डायमिथोयट 30 ई.सी. 1 लीटर प्रति हैक्टेयर का 2 से 3 बार छिड़काव करें।

2. **चूर्णिल आसिता रोग :** इस रोग से प्रभावित पत्तियों की ऊपरी सतह पर सफेद गोलाकार पाउडर जैसे धब्बें बन जाते है उसके उपरान्त पाउडर सारे तने एवं पत्तियों पर फैल जाता है। इस रोग के प्रभावी नियंत्रण के लिये केराथेन 2 प्रतिशत या सल्फेक्स 0.3 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।

3. **पीलिया रोग :** फसल में पीलापन दिखाई देने पर 0.1 प्रतिशत गंधक के तेजाब या 0.5 प्रतिशत फैरस सल्फेट (हरा कसीस) का छिड़काव करें।

फसल की कटाई : फलियां 85 प्रतिशत पक जायें उसके उपरान्त फसल की कटाई की जानी चाहिए। कटाई उपरान्त फसल को खलियान में 5 से 7 दिन तक सुखाकर गहाई की जानी चाहिए।

उपज : कृषक द्वारा वैज्ञानिक खेती को अपनाने एवं फसल को उत्पादन हेतु अनुकूल वातावरण उपलब्ध होने पर 10 से 12 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उड़द की उपज ली जा सकती है। साथ ही वायु द्वारा होने वाले मृदा क्षरण से सुरक्षा व फली तुड़ाई उपरान्त इसे हरी खाद में प्रयुक्त करके टिकाऊ खेती को भी बढ़ावा मिलता है।

एकीकृत कृषि प्रणाली द्वारा सीमांत किसानों की आय में वृद्धि

देवी लाल किकरालियाँ, माया चौधरी, एवं अनुज कुमार
स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर एवं कृषि महाविद्यालय, कोटा

भारत जैसे कृषि प्रधान देश की बढ़ती हुई जनसंख्या एवं कृषि योग्य भूमि की घटती हुई उपलब्धता एक गंभीर समस्या है। वही दूसरी ओर कृषि लागत में वृद्धि, फसलों पर कीटो व रोगों का अत्यधिक प्रकोप एवं उत्पादित कृषि उपज का उचित मूल्य न मिल पाने की वजह से किसानों का कृषि से मोह भंग होना एक आम बात हो गई है। ऐसे में छोटे व मझोले किसानों को अपनी पारिवारिक जरूरतों के साथ ही साथ कृषि से अधिक आय प्राप्त करने के लिए कृषि की एक ऐसी विधि को अपनाना होगा जिससे कि किसान कम लागत में अधिक आय प्राप्त कर सकें। देश के इन किसानों के लिए ऐसी ही एक कृषि पद्धति है जिसका नाम है एकीकृत कृषि प्रणाली। कृषि की इस पद्धति से किसान अपने खेतों मे एक साथ तमाम तरह की फसलों और उससे जुड़ी सहायक चीजों को अपनाकर कृषि से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करके अपनी आय मे वृद्धि कर सकते हैं।

एकीकृत कृषि प्रणाली क्या है

कृषि की इस प्रणाली में कृषि के कम से कम दो या उससे अधिक घटकों को इस प्रकार से समायोजित किया जाता है कि एक के समायोजन से दूसरे के लागत में कमी हो, उत्पादन में वृद्धि हो साथ ही साथ किसानों को वर्ष भर एक अच्छी खासी आमदनी प्राप्त होती रहे। कृषि के इस विधि से छोटे व मझोले किसानों की अपनी घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ कृषि से अत्यधिक लाभ प्राप्त होता है वही दूसरी ओर फसल उत्पादन और अवशेषों की रीसाइकलिंग के द्वारा टिकाऊ फसल उत्पादन में मदद मिलती है। इस विधि के तहत मुख्य फसलों के साथ दूसरी खेती आधारित छोटे उद्योग, पशुपालन, मछली पालन एवं बागवानी जैसे कार्यों को किया जाता है।

एकीकृत कृषि प्रणाली के सिद्धांत

इस प्रणाली का मूल सिद्धान्त यह है कि इसमें शामिल घटक के बीच में परस्पर प्रतिस्पर्धा अधिक न हो और ये घटक परस्पर एक दूसरे के सहारे रह सके। इसका एक सिद्धांत यह भी है कि किसानों की आमदनी, पारिवारिक पोषण, परिवार का रोजगार आदि से मिलने वाले लाभ लगातार मिलते रहे और पर्यावरण की दृष्टि से अनुकूल भी हो।

एकीकृत कृषि प्रणाली से है दुगुना मुनाफा

एकीकृत कृषि प्रणाली से किस प्रकार कम लागत में अधिक पैदावार की का सकती है। इसके एक अच्छे आदर्श मॉडल में पानी की पर्याप्त मात्रा का होना जरूरी है, इसके लिए आप पानी का स्रोत बना सकते है। खेत के बीच में या अन्य जगह अपनी जरूरत के हिसाब से एक छोटा तालाब बना सकते है। तालाब के चारों तरफ लताओं वाले पौधे लगा सकते है जिनसे उनकी पानी की आवश्यकता पूरी की जा सके। अमरूद, लीची, आम, सब्जियां आदि के पेड़ जगह के हिसाब से लगाए जा सकते है। खेत के ही पास में गौशाला बनाई का सकती है जिसमें गाय–भैंस, बकरी का पालन कर सकते हैं। फॉर्महाउस में मुर्गियों के साथ–साथ बत्तखों का उत्पादन होता रहेगा। अब आप समझिए किस तरह ये सभी एक दूसरे के पूरक हो जाते है, आप सब्जियां उगाएंगे, या फल उगाएंगे तो उसमे के अवशेष जैसे कि गिरे हुए पत्ते, खराब सब्जियां, खरपतवार आदि गाय बकरियों का चारा बनेगी, गाय के गोबर से जमीन को और उपजाऊ बनाया जा सकता है। मुर्गी पालन से मीट के साथ साथ अंडो की भी प्राप्ति होती है। मछलियों के लिए चारे का इंतेजाम भी इसी मॉडल से हो जाता है। बत्तख और मछलियों को अपना आहार बनाता है और मछलियां जलीय जंतुओं को, जिससे कि सामंजस्य बना रहता है और जल शुद्ध रहता है। मछलियां मांस के साथ मछली के बीज भी उपलब्ध कराती हैं जिससे दोगुना मुनाफा होता है।

एकीकृत कृषि प्रणाली के मुख्य घटक

छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए बकरी पालन, मुर्गी पालन, केंचुआ खाद, पशुपालन, सब्जी उत्पादन, फसल उत्पादन, मधुमक्खी पालन और नेपिअर घास को मिलाकर एक उपयुक्त समेकित कृषि प्रणाली विकसित की गई, जिसकी विशेषतायें नीचे दी गयी हैं जो इस प्रकार है।

मुर्गीपालन

यह एक उभरता हुआ व्यवसाय है, जो किसानों को रोजगार पोषण और अच्छी आमदनी प्रदान करता है जिससे गरीबी उन्मूलन और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है। भारत का 80 से 85 प्रतिशत मुर्गीपालन छोटे किसानों द्वारा किया जाता हैं।

सरसों की खेती के साथ मधुमक्खी पालन

किसानों को सरसों की खेती के साथ मधुमक्खी पालन भी करना चाहिए, क्योंकि मधुमक्खी सरसों के फूलों से रस चूसकर शहद का निर्माण करती हैं। जिसको बाज़ार में बेचकर अतिरिक्त लाभ कमाया जा सकता हैं।

पशुपालन

जैसे ऊँट, गाय, भैस, भेड़–बकरी पालन आदि करके भी किसान अपनी आय में वृद्धि कर सकते हैं।

दुग्ध उत्पादन

फसल उत्पादन के अलावा डेयरी व्यवसाय से कुल उत्पादकता में वृद्धि कर आय में वृद्धि कर सकते हैं।

नेपिअर घास

नेपिअर घास को दो खेतों के बीच की मेड़ पर लगा सकते है जिससे मेड़ का वायु एवं जल द्वारा क्षरण नही होगा और पशुओं के लिये हरा चारा भी प्राप्त हो जायेगा।

वर्मी कम्पोस्ट/कम्पोस्ट

कम्पोस्ट मिट्टी के भौतिक और रासायनिक गुणों में वृद्धि के लिए अतिआवश्यक तत्व है। पशुओं का गोबर भी एक बायोमास का उदाहरण है। जो कि कुछ दिनों बाद जीवाणु अपघटन के फलस्वरूप जैविक खाद में परिवर्तित हो जाता है। गोबर का दूसरा उपयोग बायो गैस संयंत्रों द्वारा गाँवों में सस्ती बिजली उत्पादन कराना भी हैं।

सब्जी उत्पादन

भारत विश्व में फल तथा सब्जी के उत्पादन में द्वितीय है। फल, सब्जी, कंद और प्रकंद फसल, सजावटी पौधे, औषधीय पौधे, मसाले आदि लगाकर किसान अपनी आय बढ़ा सकते हैं।

एकीकृत कृषि प्रणाली के लाभ

- एकीकृत कृषि प्रणाली में फसल और इससे तालुक रखने वाले घटको से उपज और घर की इकोनॉमी को बढ़ावा दिया जा सकता है।
- यह प्रणाली या मॉडल खेतों के स्तर पर फसलों के अवशेष को खाद या चारे में बदलकर दूसरे घटक को मजबूत बनाती है।
- इस प्रणाली से खेती की लागत को बहुत कम करके अधिक मुनाफा लिया जा सकता है।
- खेती के साथ–साथ अन्य काम जैसे गोबर खाद, केंचुआ खाद, पुष्प उत्पादन, मधुमक्खी पालन, अंडा बिक्री, दूध उत्पादन आदि को अपनाने से मजदूरी की माँग उत्पन्न होती है। जिससे पूरे साल परिवार के सदस्यों को काम मिलता है।
- बाजार से प्राप्त मिलावटी खाद्य पदार्थ से भी कुछ हद तक निर्भरता घट जाती है। तथा भोजन और पौष्टिक आहार की घरेलू आवश्यकता पूरी की जा सकती है।
- पशुओं और फसलों से प्राप्त अवशेष को खाद में बदलकर मिट्टी को पर्याप्त मात्रा में नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम के साथ–साथ बहुत से सूक्ष्म पोषक तत्वो की पूर्ति की जा सकती है जिससे मिट्टी में सुधार होने के साथ साथ मिट्टी की उत्पादन क्षमता बढ़ती है।
- वर्षा जल को संग्रहण कर उनका उपयोग पशुओं और फसलों में किया जा सकता है इन्हीं जल संरचना में मछली पालन या बत्तख पालन भी किया जा सकता है।
- अपशिष्ट पदार्थों के फिर से इस्तेमाल करने से उर्वरकों का उपयोग कम किया जा सकता है जिससे मिट्टी की संरचना में सुधार के साथ साथ पर्यावरण में सकारात्मक असर पड़ता है।
- एकीकृत कृषि प्रणाली से हम पर्यावरण को हो रहे नुकसान पर बहुत हद तक काबू पा सकते है। समय और क्षेत्र की मांग को जानकर अधिक लाभ कमा सकते है और आधुनिक तकनीक के द्वारा उर्वरकों और चारे के अत्यधिक खर्चे को भी कम कर सकते है। जिससे हमारी लागत कम और मुनाफा अधिक होगा।

***

फसलों के उत्पादन एवं गुणवत्ता हेतु सर्वोत्तम है जिप्सम

नरेश कुमार शर्मा, एस.एन. मीणा एवं धर्म सिंह मीणा
निदेशक कृषि (वि0) कोटा खण्ड, कोटा एवं कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, कोटा

जिप्सम केल्शियम सल्फेट हाइड्रेट से बना एक नरम सल्फेट खनिज हैं जिसका रासायनिक सुत्र $C_aSO_4.H_2O$ हैं। 100 प्रतिशत शुद्ध जिप्सम में 29.2 प्रतिशत केल्शियम, 18.6 प्रतिशत सल्फर एवं 21 प्रतिशत मैग्निशियम होता है। राजस्थान के बीकानेर, जोधपुर, नागौर एवं जैसलमेर जिलो में प्राकृतिक रूप से जिप्सम के भण्डार है। लम्बे समय से केल्शियम सल्फेट ''जिप्सम'' के रूप से जाना जाता है जिसका उपयोग दूनिया भर में बहुपयोगी रसायन के रूप में किया जा रहा है। पर्याप्त उपलब्धता एवं सस्ता होने के कारण मृदा की भौतिक एवं रासायनिक दशा में सुधार हेतु यह महत्वपूर्ण शस्य एवं वातावरणीय अवयव है।

क्यों उपयोगी हैं जिप्सम ?

सामान्यतया पौधों को अपना जीवन चक्र पूर्ण करने हेतु 17 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। सल्फर पौधों के लिये नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश के पश्चात् चतुर्थ महत्वपूर्ण पोषक तत्व है। एक अनुमान के अनुसार तिलहनी फसलों में फास्फोरस के बराबर गंधक की आवश्यकता होती है। सल्फर अमीनो अम्ल, प्रोटीन, विटामिन्स, विभिन्न एन्जाइम एवं क्लोरोफिल निर्माण में सहायक है। साथ ही सल्फर प्रोटीन संरचना को स्थाई बनाये रखने के साथ–साथ तेल वाली फसलों में तेल निर्माण एवं गन्ध युक्त फसलों में विभिन्न गन्ध एवं तीखेपन हेतु उत्तरदायी है। साथ ही इसमें पाया जाने वाला केल्शियम जड़ों के विकास को प्रेरित करने के साथ–साथ खनिज अवशोषण तंत्र को क्रियाशील बनाता है। सामान्यतया अधिक उपज देने वाली संकर किस्मों के उपयोग, खेत में प्रत्येक वर्ष दलहन व तिलहन फसलों की खेती, मृदा में कार्बनिक पदार्थो के उपयोग में कमी, सल्फर उर्वरको का अनुपयोग आदि के कारण मृदा में सल्फर की कमी होती जा रही है। अतः ऐसी स्थिति में जिप्सम, सल्फर युक्त फास्फोरस उर्वरक (सिंगल सुपर फॉस्फेट) का महत्व ओर अधिक बढ़ जाता है। इसके साथ–साथ जिप्सम क्षारीय मृदाओं के सुधारक का भी कार्य करता है। भारत में जिप्सम का भू–सुधारक के रूप में सर्वप्रथम उपयोग सन् 1942 में जे.डब्ल्यू. लैदर ने उत्तर प्रदेश राज्य में किया था।

जिप्सम की शुद्धता एवं महीनता

BIS 6046/1982 के अनुसार कृषि कार्य के लिये उपयोग में लाये जाने वाले कृषि ग्रेड जिप्सम में कम से कम $CaSO_4.H_2O$ की शुद्धता 70 प्रतिशत एवं कणों का आकार 60 मेश होने चाहिए। भारतीय मानक दण्ड के अनुसार जिप्सम की पूरी मात्रा 2.0 मि.मी. की जाली से तथा इसका 50 प्रतिशत 0.25 मि.मी. जाली से छन जाना चाहिए।

जिप्सम की आवश्यक मात्रा

- सल्फर की कमी को दूर करने के लिये एवं फसल की अच्छी गुणवत्ता, उत्पादन प्राप्त करने के लिये बुवाई से पूर्व 250 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से खेत में मिलाया जाना चाहिए। कृषि ग्रेड जिप्सम में सामान्यतया 13 से 16 प्रतिशत सल्फर एवं 16 से 19 प्रतिशत केल्शियम होता है।
- क्षारीय भूमि के सुधार हेतु जिप्सम को भूमि में मिलाने हेतु आवश्यक मात्रा, क्षारीय भूमि की प्रकृति की सीमा, वांछित सुधार की सीमा, भू–सुधार के बाद उगाई जाने वाली फसलों पर निर्भर करता है। साथ ही क्षारीय मृदा के लिये सुधारक पदार्थ की आवश्यक मात्रा विनिमयशील सोडियम के अतिस्थापन स्तर और सुधार की जाने वाली मृदा की गहराई तथा मृदा संरचना पर भी निर्भर करता है। क्षारीय मृदा के सुधार हेतु उपयोग में लाये जाने वाले जिप्सम की मात्रा जिप्सम आवश्यकता कहलाती है, जो शू–मेकर द्वारा दिये गये सुत्र की सहायता से ज्ञात किया जा सकता हैं जिप्सम की मात्रा सुधारे जाने वाले खेत की मृदा के विश्लेषण द्वारा निश्चित की जाती है लेकिन साधारणतया 1 हैक्टेयर हेतु 12 से 15 टन जिप्सम की आवश्यकता होती है।

जिप्सम का महत्व

- **दलहनी फसलों में जिप्सम उपयोग :** दलहनी फसलों में प्रोटीन अधिक मात्रा में पाया जाता है। प्रोटीन के निर्माण के लिये गंधक अतिआवश्यक पोषक तत्व है। इसमें दलहनी फसलों में भी दानें सुड़ौल एवं चमकदार बनते है व फसल की पैदावार बढ़ती है। ये पौधों की जड़ों की गांठों में स्थित राईजोबियम जीवाणु की क्रियाशीलता को बढ़ाती है, जिससे पौधे वातावरण में उपस्थित नाइट्रोजन का अधिक से अधिक उपयोग कर सकते है।

- **तिलहनी फसलों में जिप्सम उपयोग :** सल्फर तेल निर्माण हेतु आवश्यक पोषक तत्व हैं। अतः तिलहनी फसलों जैसे सोयाबीन, मूंगफली, तिल, सरसों, तारामीरा, कुसुम, अलसी आदि में बुवाई से पूर्व 250 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से जिप्सम के उपयोग से दानें मोटे एवं चमकदार बनते है। जिसके परिणामस्वरूप उपज में वृद्धि होती है।

- **क्षारीय मृदा सुधार :** भारत की कुल भौगोलिक क्षेत्र 329 मिलियन हैक्टेयर का 33 प्रतिशत से अधिक क्षेत्र शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों के अन्तर्गत आता हैं। इन क्षेत्रों में भारत के 15 राज्यो के

अन्तर्गत 12 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्रफल लवणीय एवं क्षारीयता से ग्रसित है। कुल लवण प्रभावित क्षेत्रों में 4.12 मिलियन हैक्टेयर क्षारीय मृदा, 3.26 मिलियन हैक्टेयर लवणीय मृदा एवं 4.62 मिलियन हैक्टेयर लवणीय क्षारीय मृदाओं के अन्तर्गत आता है। लवण प्रभावित मृदाओं में क्षारीय मृदा, खराब भौतिक एवं रासायनिक वातावरण के कारण फसल उत्पादन हेतु अत्यधिक समस्याग्रस्त होती है। क्षारीय मृदाओं का पी.एच. मान 8.5 से अधिक एवं विनिमयशील सोडियम की मात्रा 15 प्रतिशत से अधिक होती है एवं इन मृदाओं में सोडियम कार्बोनेट व सोडियम बाई–कार्बोनेट रसायनो की मात्रा अत्यधिक होती है। क्षारीय मृदाऐं सुखने पर सीमेन्ट की तरह कठोर व सख्त हो जाती है एवं इसमें सुखने पर दरारें पड़ जाती है। क्षारीय मृदाओं में पानी का ठहराव भी लम्बे समय तक बना रहता है। साथ ही पौधों को सभी आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता भी कम हो जाती है।

क्षारीय मृदा सुधारने हेतु जिप्सम डालने का समय एवं तरीका

क्षारीय भूमि सुधार के कार्यों को प्रारंभ करने का सबसे उत्तम समय गर्मी के महीनों में होता है। जिप्सम का क्षारीय मदाओं में जून के महीने में मानसून वर्षा प्रारंभ होने से पूर्व प्रयोग करना चाहिए अथवा जिप्सम ढ़ेचा की बुवाई से पूर्व मृदा में मिला देना चाहिए।

सर्वप्रभम क्षारीय भूमि को भली प्रकार से समतल करने के बाद मेंडबन्दी करना जरूरी है ताकि खेत में पानी सब जगह बराबर लग सके एवं वर्षा का पानी खेत से बाहर नही जा सकें। इसके उपरान्त जिप्सम की आवश्यक मात्रा खेत में समान रूप से बिखेरकर जुताई करके अच्छी तरह से 10 से 15 सेन्टीमीटर मिट्टी की सतह में मिला देना चाहिए। खेत में जिप्सम उपयोग के बाद में मानसून की दो या तीन अच्छी वर्षा होने के बाद अगर खेत में पानी भरा रहता है तो उस पानी को खेत से बाहर निकालकर खेत में हरी खाद हेतु ढ़ेचा की बुवाई कर देनी चाहिए। ढ़ेचा एक लेग्यूमिनोसी परिवार का सदस्य है जो क्षारीय मृदाओं को सुधारने के साथ–साथ वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का भी स्थरीकरण करता हैं। ढ़ेचे की बुवाई हेतु प्रति हैक्टेयर 60 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है। बुवाई के 40 से 50 दिन के बाद या फूल आने से पूर्व मिट्टी पलटने वाले हल या हैरो से ढ़ेचे की फसल को 15 से 20 सेन्टीमीटर गहराई पर मिट्टी में मिला देना चाहिए। इससे प्रति हैक्टेयर 20 से 25 टन जीवाश्म का उत्पादन होता है। साथ ही मिट्टी का पी.एच. मान कम होने से क्षारीयता की समस्या से मुक्ति मिलती है।

क्या अनुदान पर उपलब्ध है जिप्सम

राष्ट्रीय कृषि विकास योजनान्तर्गत क्षारीय मृदाओं के सुधार एवं राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन तिलहन व दलहन योजनान्तर्गत उत्पादकता वृद्धि हेतु राज्य सरकार द्वारा अनुदान पर जिप्सम उपलब्ध करवाया जाता है। BIS 6046 / 1982 के अनुसार कृषि कार्य के लिये उपयोग में लाये जाने वाले कृषि ग्रेड जिप्सम में कम से कम $CaSO_4.H_2O$ की शुद्धता 70 प्रतिशत एवं कणों का आकार 60 मेश होने चाहिए। कृषि ग्रेड जिप्सम में सामान्यतया 13 से 16 प्रतिशत सल्फर एवं 16 से 19 प्रतिशत केल्शियम होता है।

- क्षारीय भूमि सुधार हेतु जिप्सम का उपयोग मिट्टी परीक्षण प्रयोगशाला द्वारा सिफारिश जिप्सम मात्रा (जी.आर. वेल्यू.) के अनुसार अनुदान जिलेवार निर्धारित जिप्सम दर का 50 प्रतिशत अनुदान (अधिकतम 5 मैट्रिक टन प्रति हैक्टेयर) प्रति किसान अधिकतम 2 हैक्टेयर तक जिप्सम पर अनुदान देय है।
- राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन तिलहन, दलहनी एवं गेहूं फसलों में जिप्सम 250 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर हेतु अनुदान निर्धारित जिलेवार कुल दर का 50 प्रतिशत (अधिकतम रूपये 750 प्रति है0) प्रति कृषक अधिकतम 2 हैक्टेयर तक जिप्सम पर अनुदान देय है।

❋❋❋

राजस्थान में पशुधन की अपार संभावनाएं

अतुल शंकर अरोड़ा एवं के.सी. मीना
पशु विज्ञान केन्द्र, कोटा एवं कृषि विज्ञान केन्द्र, अन्ता–बारां

राजस्थान की अर्थव्यवस्था मे कृषि तथा पशुपालन मुख्य आधार स्तम्भ के रूप मे भूमिका निभा रहे है। क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थानए देश का सबसे बड़ा राज्य होने के साथ–साथ भौगोलिए एवं पारिस्थितिकीय विविधता लिए हुए है। इसी कारण अपने प्रदेश मे कृषि एंव इस पर आधारित व्यवसाय तथा पशुपालन के क्षेत्र में उन्नति की अपार संभावनाएं मौजूद है। पशुपालन व्यवसाय को यदि वैज्ञानिक तरीके से अपनाया जाये तो ग्रामीण युवकों तथा महिलाओं को रोजगार के अवसर प्राप्त होने के साथ ही आर्थिक रूप से स्वावलंबी भी होगें। वर्तमान समय मे इन पशुधन प्रबंधन से संबंधित उन्नत एंव वैज्ञानिक तकनीकों के प्रति पशुपालको को जाकरूक करना एंव आवश्यकतानुसार इन्हें प्रशिक्षित कर इन तकनीको को अपनाने हेतु प्रेरित करना अति आवश्यक है जिससे कि पशुधन की संख्या के साथ–साथ इनका उत्पादन और भी बढ सके।

बीसवीं पशु गणना (2019) के अनुसार राजस्थान कुल पशुधन की संख्या के अनुसार राजस्थान राज्य, अपने भारत देश मे दूसरे स्थान पर है। राजस्थान में 136.93 लाख भैंस (देश मे द्वितीय) एवं 139.37 लाख गोवंश (देश मे छठा स्थान) है। राजस्थान के कुल 139.37 लाख गोवंश मे से 116.14 लाख देशी एंव 23.23 लाख संकर नस्ल के है। अपने भारत देश मे वर्ष 2021–22 मे कुल दूध उत्पादन 221.06 मिलियन टन रहा एंव राजस्थान राज्य 33.26 मिलियन टन दूध उत्पादन के साथ देश मे प्रथम स्थान पर है एंव देश मे प्रति व्यक्ति दूध उपलब्धतता 444 ग्राम है एंव प्रदेश मे लगभग 834 ग्राम है। राजस्थान मे मिलने वाली मुख्य देशी नस्ल गिर, राठी, साहिवाल, मालवी, थारपारकर, हरियाणा, कांकरेज एंव नागौरी तथा संकर गोवंश जैसे जर्सी व हॉलिस्टिन है।

अपने प्रदेश मे पशुधन की संख्या बहुत है लेकिन कई पशु अनुत्पादक अथवा कम उत्पादन वाले है। साथ ही साथ बडे पशुओं के लिए चारे की उपलब्धता भी एक भी एक समस्या है। अपने प्रदेश की भौगोलिक परिस्थिति के अनुसार डैयरी के साथ–साथ भेड़, बकरी तथा मुर्गीपालन व्यवसाय भी लाभप्रद है लेकिन उन्नत एवं वैज्ञानिक तरीके से संचालित नही होने तथा अन्य कई कारणों से लाभप्रद सिद्ध नहीं हो पा रहे हैं। अतः इन समस्याओं को दूर करने तथा पशुधन आधारित व्यवसाय को बढ़ावा देने तथा इसे लाभप्रद बनाने की आवश्यकता है।

वर्तमान परिदृश्य मे पशु विविधिकरण के अन्तर्गत गौ–भैंस पालन के साथ–साथ भेड़, बकरी, मुर्गी और मछली पालन को भी प्रदेश के पशुपालक अपनाये तो आर्थिक रूप से और भी समृद्व होगें। प्रदेश में पशुधन की कमी नहीं हैं किन्तु प्रति पशु औसत उत्पादकता कम है। इसका मुख्य कारण पशुओं का उन्नत नस्ल का न होना, चारे की कमी, उन्नत पशुधन प्रबन्धन की तकनीको की समूचित जानकारी का अभाव तथा उत्पादों का उचित मूल्य न मिल पाना है।

भारत देश मे गो पशुओ की 50 नस्ले एंव भैंस की 17 नस्ले है। एक अनुमान के अनुसार संकर नस्ल की गाय 10 माह के दुग्ध काल में लगभग 5000 से 8000 लीटर तक औसत दुध देती है, वहीं भारतीय देशी गोवंश लगभग 1600 से 2000 लीटर ही दूध दे पाती है। देशी गोवंश की दुग्ध उत्पादन क्षमता बढ़ाने तथा नस्ल सुधार कार्यक्रमों को अपनाने की जरूरत है। वर्तमान मे आवश्यकता इस बात की है कि कम उत्पादनशील गायों को अधिक उत्पादन करने वाली एवं उपयोगी बना दिया जाए तो देश में दूध की उपलब्धता बढ़ने के साथ–साथ रोजगार के रास्ते भी स्वतः ही खुलते जायेंगे। उन्नत एंव वैज्ञानिक प्रबन्धन से गायों एवं भैंसो की उत्पादन क्षमता का विकास करना संभव है। पशु स्वास्थ्य, पोषण, प्रजनन एंव प्रबंधन की उन्नत वैज्ञानिक तकनीको को अपनाकर पशुपालन व्यवसाय को आर्थिक रूप से सुदृढ़ बना सकते है।

राजस्थान 208.40 लाख बकरी वंश के साथ भारत देश मे प्रथम स्थान पर है एवं 78.55 लाख भेड़ वंश के साथ देश मे चोथे स्थान पर है। बकरी पालन मे क्षेत्र की भोगोलिक स्थिति एंव उत्पादन लक्ष्य के अनुसार बकरी के नस्ल का चयन करना आवश्यक है। जमुनापरी, सिरोही, बरबरी और जखराना नस्ल की बकरियां दूध एंव मांस उत्पादन के साथ मैदानी क्षेत्र के लिए उपयोगी मानी जाती है। ब्लैक बंगाल और गंजम नस्ल की बकरी को मुख्यतया मांस के लिए पाला जाता है। बकरी

पालन व्यवसाय को सीमांत, लघु किसानों एंव भूमिहीन मजदूर वर्ग कम लागत, साधारण आवास एंव रख–रखाव तथा सीमित पालन पोषण के साथ आसानी से कर रहे है। इसे कम स्थान एंव कम लागत से भी शुरू किया जा सकता है। बकरी पालन शहरी व ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में हो सकता है। बकरी तथा भेड़पालन एक लाभकारी व्यवसाय है एंव इसकी सम्पूर्ण जानकारी तथा उन्नत तकनीक व वैज्ञानिक प्रबंधन का प्रशिक्षण युवाओं, महिलाओं तथा ग्रामीण क्षेत्रों में देने की आवश्यकता है, जिससे बकरी एवं भेड़पालन को एक व्यवसाय के रूप मे अपनाकर अपनी आय में वृद्धि कर सकते है।

राजस्थान में मुर्गी पालन अण्डा तथा मांस की खपत के कारण अपनाया जाने वाला एक लाभकारी व्यवसाय साबित हो सकता है। इसलिए प्रदेश में लेयर तथा ब्रायलर पालन को बढ़ावा दिया जाना आवश्यक है। इस व्यवसाय को छोटे स्तर पर घर के पिछवाड़े बिना अधिक लागत के चलाया जा सकता है ताकि घर की महिलाएं एवं बच्चे इस कार्य को आसानी से कर सकें, इससे घर के सदस्यों को पौष्टिक आहार उपलब्ध होने के साथ–साथ अतिरिक्त उत्पादों को बेचकर आर्थिक लाभ भी मिल सकता है। वर्तमान मे अपने देश मे मुर्गीयो की संख्या 534.74 मिलियन है एवं राजस्थान मे 80.24 लाख है।

मछली पालन भी आज के समय मे एक व्यवसाय के रूप मे उभर रहा है। इसके अन्तर्गत सामान्यतया भोजन के लिए उपयोग मे आने वाली मछलियों को तालाब, टैंक मे व्यवसायिक रूप से मछली का पालन करना है। मछली प्रोटीन की मांग वर्तमान मे बढ रही है जिसके परिणामस्वरूप कई पशुपालको ने पशुपालन के साथ–साथ मछली पालन को भी अपना रखा है। मछलियों मे लगभग 70 से 80 प्रतिशत पानी, 13 से 22 प्रतिशत प्रोटीन, 1 से 3.5 प्रतिशत खनिज पदार्थ एंव 0.5 से 20 प्रतिशत वसा होती है। कैल्शियम, पोटेशियम, फॉस्फोरस, लोहा, सल्फर, मैग्नीशियम, तांबा, जस्ता, मैग्नीज, आयोडिन आदि खनिज तत्व मछलियों मे उपलब्ध होते है जिनके फलस्वरूप मछली का आहार पौष्टिक माना गया है। इसी पौष्टिकता के कारण आज मछली पालन एक व्यवसाय के रूप मे उभर रहा है।

गो–भैंस पालन, बकरी–भेड़ पालन, मुर्गी एंव मछली पालन के माध्यम से सामाजिक एंव आर्थिक विकास की और अग्रसित होने के लिए पशुपालको को तकनीकी दृष्टि से सुदृढ़ बनाने तथा वैज्ञानिक तरीके से इन व्यवसायों को अपनाने के लिए पशुपालकों, ग्रामीण युवाओं, विशेषकर ग्रामीण महिलाओं को जो कि पशुधन व्यवसाय से जुड़ी हुई है, को उन्नत एंव वैज्ञानिक तकनीको की जानकारी देना अति आवश्यक है। वर्तमान परिदृश्य मे गौ एवं भैंसवंश पालने वाले पशुपालक भी पशु विविधिकरण के अन्तर्गत बकरी, भेड़, मुर्गी एंव मछली पालन को साथ साथ अपनाकर अपनी आर्थिक एंव सामाजिक उन्नति की राह पर अग्रसित हो रहे है और देश की आर्थिक अर्थव्यवस्था को और भी अधिक मजबूत बनाने मे अपना सक्रिय योगदान दे रहे है।

किसान कॉल सेन्टर
हेल्पलाईन 0744–2662700
कृषि प्रौद्योगिकी प्रबंधन एवं गुणवत्ता सुधार केन्द्र
(राष्ट्रीय कृषि विकास योजना)
प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

मृदा परीक्षण महत्व और उपयोगिता

प्रमोद, वंदना कुमारी एवं अनिल कुल्हैरी
स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर एवं श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

बेहतर फसल उत्पादन एवं मृदा स्वास्थ्य हेतु संन्तुलित पौध पोषण आवश्यक होता है उचित पौध पोषण हेतु खेत की मिट्टी में उपलब्ध विभिन्न पोषक तत्वों की उपस्थित मात्रा की जानकारी मिट्टी परीक्षण द्वारा सुलभ होती है। प्राप्त मिट्टी परीक्षण परिणामो के आधार पर उर्वरको का सन्तुलित मात्रा में उपयोग कर अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते है ।

मृदा परीक्षण : खेत की मिट्टी में पौधो की समुचित वृद्धि एवं विकास हेतु आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्ध मात्राओं का रासायनिक परीक्षणों द्वारा आंकलन करना साथ ही विभिन्न मृदा विकास जैसे मृदा लवणीयता, क्षारीयता एवं अम्लीयता की जांच करना मिट्टी परीक्षण कहलाता है ।

मिट्टी परीक्षण की आवश्यकता : पौधो की समुचित वृद्धि एवं विकास के लिये पोषक तत्व आवश्यक पाये गये है। कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश, कैल्शियम, मैग्निशियम एवं सल्फर इन पोषक तत्वों मे से प्रथम तीन तत्वों को पौधे प्रायः वायु व पानी से प्राप्त करते है तथा शेष 14 पोषक तत्वों के लिये ये भूमि पर निर्भर होते हैं । सामान्यत– ये सभी पोषक तत्व भूमि में प्राकृतिक रूप से उपलब्ध रहते है। असन्तुलित पौध पोषण की दशा में फसलो की वृद्धि समुचित नहीं हो पाती तथा पौधो के कमजोर होने एवं रोग व्याधि, कीट आदि से ग्रसित होने की सम्भावना अधिक रहती है। परिणाम स्वरूप फसल उत्पादन कम होता है इसके अतिरिक्त उर्वरक भी काफी महंगे होते जा रहे है । अत इन पोषक तत्वों को खेत में आवश्यकतानुरूप ही उपयोग करना जिससे खेती लाभदायक बन सकती है। खेतो में उर्वरक डालने की सही मात्रा की जानकारी मिट्टी परीक्षण द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। अतः मिट्टी परीक्षण उर्वरकों के सार्थक उपयोग एवं बेहतर फसल उत्पादन हेतु नितान्त आवश्यक है।

मिट्टी परीक्षण का उद्देश्य

- मिट्टी में पोषक तत्वों के स्तर की जांच करके फसल एवं किस्म के अनुसार तत्वों की सन्तुलित मात्रा का निर्धारण कर खेत में खाद एवं उर्वरक मात्रा की सिफारिश हेतु ।
- मृदा अम्लीयता, लवणीयता एवं क्षारीयता की पहचान एवं सुधार हेतु सुधारको की मात्रा व प्रकार की सिफारिश कर इन जमीनो को कृषि योग्य बनाने हेतु महत्वपूर्ण सलाह एवं सुझाव देना ।
- फल के बाग लगाने के लिये भूमि की उपयुक्तता का पता लगाना ।
- मृदा उर्वरता मानचित्र तैयार करने के लिये । यह मानचित्र विभिन्न फसल उत्पादन योजना निर्धारण के लिये महत्वपूर्ण होता है तथा क्षेत्र विशेष में उर्वरक उपयोग संबंधी जानकारी देता है ।

मिट्टी का नमूना एकत्र करना : मिट्टी परीक्षण के लिये सबसे महत्वपूर्ण होता है कि मिट्टी का सही नमूना एकत्र करना। इसके लिये जरूरी होता है कि नमूना इस प्रकार लिया जाये कि वह जिस खेत से लिया गया हो उसका पूर्ण प्रतिनिधित्व करता हो । इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु मिट्टी के प्रतिनिधि नमूने एकत्र किये जाते है । प्रतिनिधि नमूना लेने के लिये ध्यान दे कि

- नमूना लेने से पूर्व खेत में ली गई फसल की बढवार एक ही रही हो ।
- उसमें एक समान उर्वरक उपयोग किये गये हो ।
- जमीन समतल व एक ही हो तो ऐसी स्थिति में पूरे खेत से एक ही संयुक्त या प्रतिनिधि नमूना ले सकते है।

इसके विपरीत यदि खेत में अलग–अलग फसल ली गई हो । भिन्न–भिन्न भागो में अलग–अलग उर्वरक मात्रा डाली गई हो । फसल बडवार कही कम, कही ज्यादा रही हो । जमीन समतल न होकर ढालू हो तो इन परिस्थितियो में खेत के समान गुणो वाली सम्भव इकाईयो में बांटकर हर इकाई से अलग–अलग प्रतिनिधिनमूना लेना चाहिये । नमूना सामान्यत फसल बोने के एक माह पहले लेकर परीक्षण हेतु भेजना चाहिये ताकि समय पर परिणाम प्राप्त हो जायें एवं सिफारिश के अनुसार खाद उर्वरको का उपयोग किय जा सके ।

नमूना एकत्रीकरण विधि

- जिस खेत में नमूना लेना हो उसमें जिग–जैग प्रकार से घूमकर 10–15 स्थानो पर निशान बना ले जिससे खेत के सभी हिस्से उसमें शामिल हो सकें
- चुने गये स्थानो पर उपरी सतह से घास–फूस, कूडा करकट आदि हटा दे।
- इन सभी स्थानो पर 15 सें.मी. द्ध 69 इंचऋ गहरा वी आकार का गड्ढा खोदे । गड्ढे को साफ कर खुरपी से एक तरफ उपर से नीचे तक 2 से.मी. मोटी मिट्टी की तह को निकाल ले तथा साफ बाल्टी या ट्रे में डाल ले ।
- एकत्रित की गई पूरी मिट्टी को हाथ से अच्छी तरह मिला लें तथा साफ कपडे पर डालकर गोल ढेर बना लें। अंगूली से ढेर को चार बराबर भागो की मिट्टी अलग हटा दें। अब शेष दो भागो की मिट्टी पुन अच्छी तरह से मिला लें व गोल बनाये । यह प्रक्रिया तब तक दोहराये जब तक लगभग आधा किलों मिट्टी शेष रह जायें । यही प्रतिनिधि नमूना होगा ।
- सूखे मिट्टी नमूने को साफ प्लास्टिक थैली में रखे तथा इसे एक कपडे की थैली में डाल दें । नमूने के साथ एक सूचना पत्रक जिस पर समस्त जानकारी लिखी हो एक प्लास्टिक की थैली में अन्दर तथा एक कपडे की थैली के बाहर बांध देवें
- अब इन तैयार नमूनों को मिट्टी परीक्षण प्रयोगशाला भेजे ।

मिट्टी जांच सूचना पत्रक

निम्न जानकारी लिखा हुआ सूचना पत्रक नमूनो के साथ रखे एवं उपर बांधे.

कृषक का नाम ....
पिता का नाम ....
ग्राम या मोहल्ला ....
डाकघर ....
विकासखण्ड या तहसील ....
जिला ....
खेत का खसरा नम्बर या सर्वे ....
पहचान....
सिंचित या असिंचित....
पहले ली गई फसल एवं मौसम ....
आगे ली जाने वाली फसल एवं मौसम ....
नमूना लेने वाले का नाम या हस्ता. एवं दिनांक ....
मिट्टी सबंधी अन्य विशेष समस्या ....

नमूना एकत्रिकरण के समय सावधानियां :

- जहां खाद का ढेर रहा हो वहां से नमूना न लें।
- पेड़ों, मेढ़ों, रास्तो के पास से नमूना न लें।
- साफ औजारो द्धजंग रहितऋ तथा साफ थैलियों का उपयोग करें।
- नमूनों के साथ सूचना पत्रक अवश्य रखें।

जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव एवं प्रबन्धन

कमलेश कुमार, अशोक कुमार, कुलदीप कुमार एवं अनिता कुमावत
भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, अनुसंधान केन्द्र, कोटा –324002 (राजस्थान)

आज भारत ही नही विश्व में हो रहे जलवायु परिवर्तन से सभी सरकारें तथा कृशि वैज्ञानिक चिन्तित हैं। क्योंकि कृषि उत्पादन तथा कृशकों की आय में कमी देखी जा रही है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। आज भी 46 प्रतिशत जनसंख्या को कृषि से ही रोजगार मिलता है तथा करीब–करीब 20 प्रतिशत सकल घरेलू उत्पादन में इसका योगदान है। कृषि उत्पादन में प्रतिकूल प्रभाव भारत की राष्ट्रीय आय को प्रभावित करेगा। भारत के जल स्रोत एवं भंडार सिकुड रहे हैं। विभिन्न अध्ययनों के अनुसार विगत एक दशक में पूरे उत्तर भारत में हर साल औसतन भूजल स्तर एक फुट नीचे गिर गया है। ग्लेशियर तेजी से पिघल रहे हैं। इससे एक ओर उन क्षेत्रों में जल की कमी हो जायेगी जहॉ ये जल के स्रोत हैं दूसरी ओर समुद्र का जल स्तर बढ जायेगा। विश्व में तापमान में वृद्धि का मुख्य कारण पर्यावरण में ग्रीन हाउस गैसों (कार्बन डाई आक्साइड, मीथेन, नाइट्रस आक्साइड, सल्फर डाई आक्साइड इत्यादि) की मात्रा का बढना है चूंकि ये गैसें सूर्य से आने वाली ऊष्मा को वापस आकाश में नही जाने देती जिससे पृथ्वी के तापमान में वृद्धि हो रही है। तापमान की यह वृद्धि ही जलवायु परिवर्तन के लिये मूल रूप से जिम्मेदार है।

देश के बढते तापमान को भारतीय मौसम विज्ञान की नजर से देखें तो वर्ष 2022 में देश का औसत अधिकतम तापमान मार्च माह में ही 33.1 डिग्री सेल्सियस हो गया था। यह वर्ष 1901 के बाद मार्च माह का पहली बार सबसे गर्म महीना दर्ज किया गया। देश के अधिकांश हिस्सों में मार्च के महीने में ही गर्मी बढना शुरू हो गयी तथा अप्रैल में देश के कई क्षेत्रों में अधिकतम तापमान 45 डिग्री सेल्सियस तक दर्ज किया गया तथा लू (गर्म हवाएँ) का प्रकोप देखने को मिला।

आस्ट्रेलिया के एक अनुसंधान समूह की ताजा रिर्पोट में बताया गया है कि भारत के प्रमुख क्षेत्र चाहे वे तमिलनाडु या महाराष्ट्र जैसे आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण राज्य हो या उत्तर प्रदेश एवं बिहार जैसे घनी आबादी वाले राज्य सभी में जलवायु पर्यावरण को नुकसान होने की आशंका अधिक है। चूंकि निर्मित पर्यावरण मे मनुष्य जीवन को आसान बनाने के लिए घर, सड़क और बुनियादी संरचनाओं का निर्माण कराना शामिल है। रिर्पोट के अनुसार जलवायु संकट का सामना करने वाले दुनिया के शीर्ष 100 क्षेत्रो में भारत के 14 राज्य शामिल है। यह भी अनुमान लगाया गया है कि वर्ष 2050 में शीर्ष 50 राज्यों और प्रान्तों मे से 80 प्रतिशत चीन, अमेरीका और भारत में होगे।

देश के विगत 122 वर्षो (1901–2022) में तीसरा सबसे गर्म अप्रैल माह रहा। देश–दुनिया में हर वर्ष जिस तरह से तापमान में वृद्धि हो रही है, गर्मियाँ लम्बी और सर्दियाँ छोटी होती जा रही है। यही स्थिति पर्यावरण एवं कृषि के उत्पादन के लिये अच्छी नही है।

शिकागो विश्वविद्यालय के पर्यावरणीय वैज्ञानिक डॉ. वी. रामनाथन के अनुसार 'पृथ्वी का औसत तापमान ग्रीन हाउस गैसों के कारण इतना पहले ही बढ चुका है कि यदि अब प्रदूषणकारी गैसें न भी छोडी जाए तो वर्ष 2030 तक 1980 की अपेक्षा पृथ्वी का तापमान कई डिग्री बढ जायेगा।

'नेचर कम्युनिकेशन' में प्रकाशित एक अध्ययन के मुताबिक जलवायु परिवर्तन के कारण भारत के एक हिस्से में जहॉ सूखे का संकट गहराने की आशंका है, वही देश के दूसरे हिस्से को अगले तीस वर्षो मे भारी वर्षा का सामना करना पड सकता है। मौसम वैज्ञानिकों का मानना है कि पृथ्वी के तापमान में प्रत्येक डिग्री सेल्सियस वृद्धि से मानसूनी वर्षा में करीब 05 प्रतिशत बढोत्तरी हो रही है। पर्वतीय क्षैत्रों में बादल फटने और आकाशीय बिजली गिरने की घटनाओं में होती बढोत्तरी को भी जलवायु परिवर्तन से जोडकर देखा जा रहा है।

दक्षिणी–पूर्वी राजस्थान के भारतीय मृदा एव ंजल संरक्षण संस्थान, अनुसंधान केन्द्र, कोटा पर 1954 से निरन्तर मौसम के आकड़े दर्ज किये जा रहे है। इन आकड़ों के अनुसार पिछले 65 वर्षो की औसत वर्षा 752 मिमी दर्ज है जबकी पिछले 10 वर्षो का औसत 888 मिमी है। इसी प्रकार वार्षिक वर्षा दिवसों की संख्या 39 दिवस प्रतिववर्ष से पिछले 10 वर्षो में औसत 50 दिवस दर्ज हुए है। यह आंकड़े बदलते जलवायु परिवेश को दर्शाते है। जिससे कृषि सबसे ज्यादा प्रभावित हो रही है। अतः इस बदलते जलवायु परिवेश में बढती जनसंख्या के कारण बढती खाद्यान्न मांग की पूर्ति के लिये प्राकृतिक संसाधनों का बुद्धिमतापूर्ण उपयोग एवं मौसम सम्बन्धी सूचनाओं की जानकारी कृषकों को होना अति आवश्यक है। ताकि कृषक भविष्य में अपनी कृषि में वैज्ञानिक तरीके से बदलाव लाकर बढते जोखिम से निपट सकते है।

जलवायु परिवर्तन के प्रमुख कारण : जलवायु परिवर्तन के लिए उत्तरदायी कारणो को दो भागो में समझा जा सकता है।

छायाचित्र–1 अनुसंधान तथा मौसम पूर्वानुमान के लिए जलवायु सम्बन्धी आकडों का एकत्रीकरण।

1. प्राकृतिक कारण

- **ज्वालामुखी विस्फोट :** ज्वालामुखी विस्फोट से बडी मात्रा मे विभिन्न गैसें जैसे कार्बन डाई ऑक्साइड, सल्फर डाई ऑक्साइड आदि तथा धूलकण वायुमण्डल में उत्सर्जित होते है जो वायुमण्डल की उपरी परत में फैलकर पृथ्वी पर आने वाले सूर्य के प्रकाश की मात्रा कम कर देते है।

- **महाद्वीपो का खिसकना :** इस प्रकार की घटनाओं से समुद्री हवाऐं तथा धारायें प्रभावित होती है। जिनका सीधा प्रभाव पृथ्वी की जलवायु पर पड़ता है।

2. मानव जनित कारण

- **औद्योगीकरण का प्रसार होना :** विकास के युग में बढता औद्योगीकरण वातावरण में सल्फर डाई ऑक्साइड, कार्बन डाई ऑक्साइड तथा अन्य अनेक प्रकार की जहरीली गैंसे व धूल कण हवा मे छोडने के लिए उत्तरदायी है। ये गैसे वायुमण्डल में काफी बरसों तक बनी रहती हैं तथा ग्रीन हाउस गैस प्रभाव, ओजोन परत की क्षरण तथा भूमण्डलीय तापमान मे वृद्धि का कारण बनती है।

- **वनों की कटाई :** पर्यावरण को स्वच्छ बनाये रखने में वृक्षों एवं वनस्पतियों का विशेष योगदान है चूंकि वृक्ष कार्बन डाई ऑक्साइड को सोख कर वातावरण में कार्बन की मात्रा कम कर देते हैं तथा सूर्य की गर्मी को सीधे जमीन पर जाने से रोक लेते हैं परन्तु मानव, विकास की दौड में अंधाधुंध वनों की कटाई कर रहा है। जिससे तापमान में वृद्धि हो रही है। वर्तमान में बढती वन कटाई से देश में कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 21 प्रतिशत ही वन बचा है जबकि वैज्ञानिकों के अनुसार इसे करीब 33 प्रतिशत होना चाहिए।

- **शहरीकरण :** आबादी बढ़ने से उस स्थान की जल संवर्धन क्षमता कम हो रही है। वर्शा से प्राप्त शीतलता में कमी हो रही है। कंकरीट की ऊँची–ऊँची इमारतें खडी हो रही है, जिससे पर्यावरण तथा जलवायु पर निरंतर प्रभाव पड रहा है।

- **रासायनिक कीटनाशकों एवं उर्वरकों का प्रयोग :** आज दुनियाभर में एक हजार से भी अधिक प्रकार के कीटनाशी उपलब्ध हैं। कृषि एवं अन्य क्षेत्रों में इनके अतिशय उपयोग से वायु, जल तथा भूमि में इनकी मात्रा बढ़ती जा रही है, जो पर्यावरण को प्रदूषित कर रहा है।

- **ऊर्जा की मांग में वृद्धि :** कोयला, तेल व गैस इत्यादि ऊर्जा के ये पारम्परिक साधनों/ स्रोतों का प्रयोगअभी भी बडे स्तर पर जारी है जो कार्बन उत्सर्जन करके गैसों को बढावा देते है। उदाहरण के तौर पर विशेषज्ञों के अनुसार एक कार साल भर में 4.5 मीट्रिक टन कार्बन का उत्सर्जन करती है। वहीं ग्रीन हाउस का 3.9 प्रतिशत उत्सर्जन एयरकंडीशनर के बढते प्रयोग से हो रहा है।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव

जलवायु परिवर्तन से सर्वाधिक प्रभावित देशों में भारत मुख्य देशों में शामिल है। इससे जैव विविधता घट रही है, इसके चलते मानव स्वास्थ और कृषि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

- **मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव :** जलवायु परिवर्तन से फसलों की गुणवत्ता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पडेगा। जिससे अनाज में पोषक तत्वों की कमी हो जायेगी परिणमस्वरूप प्रतिरोधक क्षमता में कमी यानि शरीर में रोगों से लड़ने की क्षमता कम हो जायेगी। जिससे मनुश्यों का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित होगा। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) की रिर्पोट के अनुसार जलवायु में ऊष्णता से श्वांस तथा हृदय संबंधी बीमारियों में वृद्धि होगी तथा रोगाणुओं में वृद्धि के साथ–साथ इनकी नई प्रजातियों की उत्पति होगी जिससे भविश्य में स्वास्थ्य संबंधी और भी समस्याएं बढ़ने की आंशका रहेगी।

- **खेती पर प्रभाव :** जलवायु परिवर्तन का कृषि पर सीधा प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। इसका सबसे ज्यादा प्रभाव वर्षा आधारित क्षेत्रों के किसानों की आजीविका पर पड़ सकता है। जलवायु परिवर्तन से फसलों की उत्पादकता के साथ ही गुणवत्ता पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ने की संभावनाएं व्यक्त की जा रही हैं।

(i) **खाद्यान्न उत्पादन में कमी :** भारत का तापमान 1990 से अब तक लगभग 2 डिग्री सेल्सियस बढ गया है। अनुसंधानों के अनुसार 1 डिग्री सेल्सियस तापमान बढने पर गेहूँ के उत्पादन में 6 प्रतिशत तथा धान में 3.5 प्रतिशत की कमी देखी गई है। खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO) के अनुसार भारत को 2015 तक लगभग 125 मिलियन टन खाद्यान्न का नुकसान हो चुका है। जल की कमी से पौधों में विभिन्न प्रकार के रूपान्तरण देखे जा सकते है। जिसके कारण प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया बाधित हो सकती है और उत्पादन घटा सकती है।

(ii) **अनियमित वर्षा :** मानसून के अनिश्चित होने तथा वर्षा का वितरण सही नही होने की वजह से कहीं बाढ की सम्भावना, सूखा तूफान और गर्म हवाओं के चलने की सम्भावना बनी रहेगी। ऐसी स्थिति फसलों के लिये सदैव हानिकारक सिद्ध होती है। साथ ही मृदा में नमी की कमी तथा कीटों एवं रोगों के संक्रमण में वृद्धि होगी जिनके नियंत्रण के लिये अधिक कीटनाशकों की आवश्यकता पडेगी जो भविष्य में पशुओं एवं मनुष्यों में अनेक बीमारियों का कारण बनेगा।

(iii) **दुग्ध उत्पादन में कमी :** गर्म हवाओं व कम वर्षा के कारण मृदा में नमी की कमी से चारा उत्पादन घटेगा। संतुलित आहार व उपयुक्त जलवायु न मिलने के कारण पशु प्रजनन क्षमता व दुग्ध उत्पादन में कमी आ सकती है।

(iv) **जल संसाधनों पर प्रभाव :** जल भण्डार सूखने के कारण तथा उनका पुनर्भरण न होने से जल आपूर्ति की समस्या हो जायेगी तथा अधिक तापमान और वर्शा की कमी या अनिश्चितता से सिंचाई हेतु भूजल संसाधनो का अधिक दोहन होगा, जिससे भूजल और नीचे चला जायेगा तथा ऐसी स्थिति हो जायेगी कि भूजल दोहन आर्थिक दृष्टि से लाभकारी नही रह सकता है।

हाल में आई अमेरिका के मेरीलैण्ड विश्वविद्यालय की रिपोर्ट में कहा गया है कि जलवायु परिवर्तन से कुछ कीट जीवित रहने के लिये ठंडे वातावरण में जाने को मजबूर होंगे जब कि कुछ की प्रजनन क्षमता, जीवन चक्र और अन्य प्रजातियों के साथ समन्वय प्रभावित होगा। जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने के उपाय/प्रबन्धन

- **मृदा एवं जल संरक्षण उपाय अपनाकर :** मृदा एवं जल संरक्षण उपायों द्वारा फसलों को सूखे एवं बाढ़ दोनों परिस्थितियों से बचाया जा सकता है। बारानी क्षेत्रों में बढते तापमान के कारण जल की मांग दिन प्रतिदिन बढती जा रही है और फसलों को अधिक जल की आवश्यकता होने लगी है, इसके लिए विभिन्न जल एवं मृदा संरक्षण उपाय जैसे मेडबन्दी, चेकडेम, समतलीकरण, समोच्य अवनलिकाएं इत्यादि जैसे उपायों से जल उपयोग क्षमता बढाई जा सकती है तथा तालाब इत्यादि के निर्माण कर जल संचयन किया जा सकता है। जिसे सूखा पडने की स्थिति में प्रयोग में लाकर उत्पादन हानि से बचा जा सकता है, साथ ही इन उपायों से भू जल पुनर्भरण में भी सहायता मिलेगी। मृदा एवं जल संरक्षण उपायों को जल ग्रहण विकास के माध्यम से प्रबंधित किया जाना चाहिए ताकि उसका ज्यादा अनूकूल प्रभाव हो। इसके अतिरिक्त मई माह में गहरी जुताई करे, जिससे पहली वर्षा का सम्पूर्ण जल खेतों द्वारा सोख लिया जाता है और मृदा जल स्तर बढ जाता है।

- **जैविक खेती :** रासायनिक खेती से ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में वृद्धि होती है। अतः हमें जैविक खेती की तरफ ध्यान देना चाहिए। जैविक नीति के अनुसार समस्त फसल अवशिष्ट प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मिट्टी को लौटा दिया जाना चाहिए। पशु मल–मूत्र को कम्पोस्ट बनाकर मृदा में डालना चाहिए। जितना जैव अंश मृदा से लिया है उसे लौटाने से मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता बनी रहती है।

विश्व में कुल जैविक फसल उत्पादन में भारत की हिस्सेदारी मात्र 2.59 प्रतिशत है। जैविक खेती को आर्गेनिक फार्मिंग या बायो फार्मिंग भी कहते हैं इसमें मृदा एक जीवित माध्यम है। मृदा में असंख्य जीव रहते है। ये परस्पर पूरक होते हैं। ये पौधों की बढवार के लिये पोषक तत्व भी उपलब्ध कराते है। जैविक खेती में बीज/रोपण सामग्री प्रमाणित जैविक होनी चाहिए। खरपतवार नियंत्रण, मृदा में नमी संरक्षण और मृदा में कार्बनिक अव ोशों को विघटित करने में पलवार प्रभावी है। राष्ट्रीय जैविक उत्पादन के मानदण्ड के अनुसार पौधों में पोषण के लिये बायोगैस स्लरी, गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट, मुर्गी खाद, फसल अवशेष या किसी भी जैविक स्त्रोत का उपयोग लाभप्रद है। इस प्रणाली में कीट एवं रोगों के नियंत्रण कि लिये जैव उर्वरकों का उपयोग लाभप्रद रहेगा। वर्तमान में देश में जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए सरकार के साथ–साथ कई गैर–सरकारी सगंठन विभिन्न योजनाओं के तहत सक्रिय है।

- **जैव विविधता बनाये रखना :** जैव विविधता प्राकृतिक सन्तुलन को बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्राकृतिक संसाधनों का उचित प्रबंधन व कृषि रासायनों का सही प्रयोग जैव विविधता को बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। इसके लिए प्राकृतिक खेती, संरक्षित खेती प्रणाली, फसल विविधीकरण अपनाकर जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभाव को कम किया जा सकता है। कृषि उत्पादन में रासायनिक खाद, कीटनाशकों का अधिक उपयोग मनुष्य के स्वास्थ्य, मिट्टी तथा पारिस्थितकी के लिये हानिकारक है। इसके दुष्प्रभाव को दूर करने के लिये पूर्व में उल्लेखित जैविक खेती एक अपरिहार्य एवं एक मात्र विकल्प है।

फसलों के अवशेष कों पलवार के रूप में उपयोग करने से सूक्ष्म जीवों की संख्या में वृद्धि होती है। सूक्ष्मजीवों की संख्या एवं विविधता अधिक होने से मिट्टी में उपलब्ध पोशक तत्वों की उपलब्धता पौधों तक अधिक होती है। इससे पौधे स्वस्थ होते हैं फलस्वरूप अधिक उत्पादन होता है। जिससे फसल अवशेषों के जलने से उत्पन्न होने वाली गैसों से ही बचाव नही होता बल्कि वायुमण्डल में होने वाले परिवर्तन से नुकसान, मृदा में होने वाली जैव विवधता में कमी, मनुष्य स्वास्थ्य पर पडने वाले कुप्रभाव आदि से भी बचाव होता है।

- **संरक्षित खेती प्रणाली :** आजकल प्राकृतिक खेती तथा संरक्षित खेती प्रणाली के क्षेत्रफल में बढ़ोतरी हो रही है। इस प्रकार की खेती

में कम जुताई, फसल अवशेषों का पलपार के रूप में प्रयोग तापमान नियमन के साथ–साथ उचित फसल चक्र, मृदा उर्वरता तथा उत्पादकता को सतत् बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करती है।

छायाचित्र–2 संरक्षित खेती द्वारा सरसो का उत्पादन

- **मौसम पूर्वानुमान :**मौसम का पूर्व अनुमान होने पर आंधी, तूफान एवं असमय वर्षा द्वारा होने वाली हानि को काफी हद तक कम कर सकते हैं। इसके लिये मौसम विभाग द्वारा संभाग स्तर पर कृषि मौसम इकाई की स्थापना की गई है। इसके अतिरिक्त आकाशवाणी केन्द्रों, से मोबाईल एप्प एवं समाचार पत्रों/पत्रिकाओं के माध्यम से किसानों के लिये मौसम संबंधी जानकारी प्रदान कर उचित प्रबन्धन द्वारा प्रतिकूल प्रभावों को कम या खत्म किया जा सकता है।

- **जलवायु अनुकूल कृषि तकनीकों का प्रयोग :** जलवायु अनुकूल तकनीकियों का मुख्य उद्देश्य मुख्य रूप से तीन चुनोतियों से निपटने की कोशिश करना है। 1. उत्पादन और आय बढाना। 2. जलवायु परिवर्तन के अनुकूल होना। 3. जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने में योगदान देना। इसी संदर्भ में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को ध्यान में रखते हुए वैज्ञानिक बीज की गुणवत्ता में सुधार, बोने के समय में परिवर्तन तथा अन्य तकनीकें जो विपरित जलवायु के प्रभाव को कम करें पर निरन्तर शोध कर रहे है। पारम्परिक ज्ञान एवं नई तकनीकों के समन्वय तथा समावेश द्वारा जल का समुचित उपयोग करते हुये मिश्रित खेती, अन्तः शस्य खेती, संरक्षित खेती करके जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम किया जा सकता है। जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को ध्यान में रखते हुये वैज्ञानिकों ने विभिन्न फसल प्रजातियों का जलवायु के अनुरूप विकास किया है। उदाहरण के तौर पर हाल ही में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा गेहूँ की प्रजाति HD 3385 जारी की है जो मार्च माह में बढ़ते तापमान को सहन करने की क्षमता रखती है और पक कर तैयार हो जाती है। फसलों को जल मांग के अनुसार ही पानी दें तथा जल के उचित उपयोग के लिए सूक्ष्म सिंचाई पद्धतियों जैसे बूँद–बूँद सिंचाई जैसी जल बचाव वाली विधियों का प्रयोग करें। अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि धान जैसी अधिक जलमांग वाली फसलें भी सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली से अच्छी उपज देती है। जल के उचित उपयोग के लिये सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली को लोकप्रिय बनाना होगा।

छायाचित्र–3 तालाब में वर्षा जल संचयन एवं सूक्ष्म सिंचाई पद्धति द्वारा उपयोग

उपर्युक्त लेख से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि जैसे बाढ़ या भूकम्प के आने से पूर्व सुरक्षा उपाय नही किये जाते है तो जन–धन की हानि उठानी पडती है। ठीक उसी प्रकार समय रहते जलवायु परिवर्तन के लिये कदम नही उठाये गये तो इसके दुष्परिणामों को सहन करने के लिये विवश होना पडेगा। जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभाव को कम करने के लिये हमें खेती के लिये ऐसे तौर–तरीकों की जरूरत होगी। जिनके प्रयोग से खेती के संसाधनों का क्षय न हो। इसमें अपने पारम्परिक ज्ञान को अपनाना भी प्रमुख है। बारानी खेती और शून्य जुताई जैसी नवीन तकनीकियां एवं मृदा एवं जल संरक्षण की वैज्ञानिक तकनीकियां जैसे भूजल पुनर्भरण, कम जुताई–सिंचाई, फसल चक, प्रक्षेत्र तलाई आदि का अनुसरण करना होगा। जिससे कम वर्षा व गर्म वर्षो में भी संतोषजनक उपज मिल सकेगी और विविध खेती के साथ पशुपालन, मधुमक्खी पालन आदि को अपनाकर किसानों की जोखिम क्षमता और आय बढानी होगी।